फरवरी-२०२० ◆ वर्ष ८ ◆ अंक ०१ ◆ उदयपुर

ओ३म्

सत्यार्थ सौरभ

मासिक

फरवरी-२०२०

घोर तमिस्रा के युग में,
इक दिव्य चेतना जन्मी थी।
सूर्य समान उजाला करके,
स्वयं यातना झेली थी।
मानवता के हित ऋषिवर ने,
सत्य पिटारी खोली थी॥

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति को समर्पित

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
नवलखा महल परिसर, गुलाब बाग, महर्षि दयानन्द मार्ग,
उदयपुर–313001 (राज.)

₹ १० ६८

भारत
के व्यंजनों का आधार है, एम.डी.एच. मसालों से प्यार
Garam masala
Kitchen King
Sambhar masala
Sabzi masala
Deggi Mirch
Shahi Paneer masala
Rasoori Methi
Chunky Chat masala
Pav Bhaji masala
Chana masala
MDH
मसाले
सेहत के रखवाले
असली मसाले सच-सच
महाशियाँ दी हट्टी (प्रा०) लिमिटेड
9/44, कीर्ति नगर, नई दिल्ली - 110015 फोन नं० 011-41425106-07-08
E-mails : mdhcare@mdhspices.in, delhi@mdhspices.in www.mdhspices.com
ESTD. 1919

सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं को अपने आँचल में समेटे, सम्पूर्ण परिवार के लिए, हर आयु समूह के लिए, पठनीय और समर्पित

न्यास का मासिक मुखपत्र

सत्यार्थ सौरभ

प्रमुख संरक्षक – सत्यार्थ सौरभ
महाशय धर्मपाल जी (एम.डी.एच.)
डॉ. सुखदेव चन्द सोनी (अमेरिका)

परामर्शदाता संपादक मण्डल
डॉ. महावीर मीमांसक
आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय
डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री
डॉ.सोमदेव शास्त्री
डॉ. रघुवीर वेदालंकार
आचार्य वेदप्रिय शास्त्री

सम्पादक
अशोक आर्य

प्रबन्ध सम्पादक
भवानी दास आर्य

प्रबन्ध सहयोग
नवनीत आर्य (मो.9314535379)

व्यवस्थापक
सुरेश पाटोदी (मो.9829063110)

सहयोग ◆	भारत	विदेश
संरक्षक	- 11000 रु.	$ 1000
आजीवन	-1000 रु.	$ 250
पंचवर्षीय	- 400 रु.	$ 100
वार्षिक	- 100 रु.	$ 25
एक प्रति	- 10 रु.	$ 5

भुगतान राशि धनादेश/चैक/ड्राफ्ट श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास के पक्ष में बना न्यास के पते पर भेजें। अथवा यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया मेन ब्रांच टाऊन हॉल, उदयपुर
खाता संख्या : 310102010041518
IFSC CODE- UBIN 0531014
MICR CODE- 313026001
में जमा करा अवश्य सूचित करें।

सृष्टि संवत्
१९६०८५३१२०
माघ शुक्ल त्रयोदशी
विक्रम संवत्
२०७६
दयानन्दाब्द
१९६

February - 2020

सत्यार्थ-सौरभ में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र उदयपुर ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

विज्ञापन शुल्क (प्रति अंक)
कवर 2 व 3 (भीतरी आवरण) रंगीन
3500 रु.
अन्दर पृष्ठ (श्वेत-श्याम)

पूरा पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	2000 रु.
आधा पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	1000 रु.
चौथाई पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	750 रु.

समाचार २८
समाचार २९

०४	वेद सुधा
०५	माइंड लिंचिंग
१३	सत्यार्थप्रकाश पहेली- ०२/२०
१४	हम भद्र-देखें
१८	वैदिक आदर्श गृहस्थ
२०	अपने ऋण चुकाएँ
२३	वैलेंटाइन डे-विदेशी बाजारवाद
२६	असफलता और सफलता
२७	बसंत ऋतु में स्वस्थ रहने के उपाय
३०	सत्यार्थ पीयूष- ईश्वर सर्वव्यापक है

स्वामी — श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, नवलखा महल, गुलाब बाग, उदयपुर
वर्ष - ८ अंक - ०९
मुद्रण — द्वारा - चौधरी ऑफसेट, (प्रा.लि.) ११-१२, गुरु रामदास कॉलोनी, उदयपुर

प्रकाशक
श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास
नवलखा महल, गुलाब बाग, उदयपुर (राजस्थान) 313001
(0294) 2417694, 09314535379, 09829063110
www.satyarthprakashnyas.org, E-mail : satyarthsandesh@gmail.com

स्वत्वाधिकारी, श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर की ओर से प्रकाशक, मुद्रक अशोक कुमार आर्य द्वारा चौधरी ऑफसेट प्रा. लि., 11/12 गुरुरामदास कॉलोनी, उदयपुर से मुद्रित तथा कार्यालय श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, नवलखा महल, गुलाबबाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर–313001 से प्रकाशित, सम्पादक–अशोक कुमार आर्य

ओ३म्

वेद सुधा

द्वेष का अभाव: आध्यात्मिकता की चरमसीमा

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।। - अथर्व० ३/३०/१

(सहृदयम्) एक हृदयता (सांमनस्यम्) एकमनता और (अविद्वेषम्) निर्वैरता (वः) तुम्हारे लिए (कृणोमि) मैं करता हूँ। (अन्यो अन्यम्) एक दूसरे को (अभि) सब ओर से (हर्यत) तुम प्रीति से चाहो (अघ्न्या इव) जैसे न मारने योग्य गौ (जातम्) उत्पन्न हुए (वत्सम्) बछड़े को (प्यार करती है)।

इस मंत्र में सहृदयता, एक मनता और द्वेषरहित होने का आदेश दिया गया है। परमात्मा ने आदेश मनुष्यमात्र को दिया है। वेद ने अद्भुत उपमा देकर मनुष्य को समझाया है कि तुम एक-दूसरे को ऐसे प्रीतिपूर्वक चाहो जैसे गाय उत्पन्न हुए बछड़े को प्यार करती है। गाय का अपने बछड़े के प्रति प्रेमपूर्ण आचरण मनुष्य में तभी आ सकता है जब वह मंत्र के पहले भाग में वर्णित गुणों को मन में धारण करे क्योंकि जो मन में धारण किया जाता है, वही शरीर द्वारा आचरण में लाया जाता है।

सहृदयं का अर्थ है दूसरे के सुख-दुःख को समझना, दयालुता और रसिकता। प्रकरण के अनुसार यहाँ दूसरे के सुख-दुःख को समझने का अर्थ ही उपयुक्त प्रतीत होता है। **सामनस्यं** से अभिप्राय मन की एकता के प्रति विपरीतता की भावना न हो। **अविद्वेषं** से अभिप्राय है द्वेष का अभाव। **द्वेष** का अर्थ है कि किसी बात के मन को न भाने या अप्रिय लगने की प्रवृत्ति अथवा शत्रुता।

एक-दूसरे के सुख-दुःख को समझना और मानसिक भावों की एकता मैत्रीभाव में देखी जाती है, परन्तु जब द्वेष की भावना चल रही हो तो उस समय सहृदयता और सांमनस्य को बनाये रखना बड़ा कठिन हो जाता है। सहृदयता और सांमनस्य की पूर्ण सिद्धि तभी होती है जब व्यक्ति द्वेषरहित हो। मानसिक और आध्यात्मिक जगत् की सबसे बड़ी समस्या द्वेष का वशीकार है। जब द्वेष पर वशीकार हो जाए तो सहृदयता और सांमनस्य की समस्या नहीं रहती। अतः द्वेष का वशीकार आध्यात्मिक जगत् की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

वेद भगवान ने द्वेषरहित होने पर बहुत बल दिया है-

आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतन। - ऋ. १०/६३/१२

हे विद्वान् जनो! वैर को हमसे दूर हटाओ।

ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि।
वीडुर्वरीयोरातीरप द्वेषांस्या कृधि।। - अथर्व. १/२/२

हे इन्द्र! जय के लिए हमको सर्वथा झुका। हमारे शरीर को पत्थर-सा दृढ़ बना दे। तू दृढ़ होकर विरोधों और द्वेषों को हटाकर बहुत दूर कर दे।

संध्या करते समय उपासक मनसापरिक्रमा के मंत्रों में छः बार इस मंत्र को दुहराता है-

यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

जो हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं, उसको आपके न्यायरूपी जबड़े के समर्पित करते हैं। इस प्रकार वेद ने कई स्थानों पर मनुष्यों को द्वेष से बचने की प्रेरणा दी है।

लोक-भाषा में ईर्ष्या-द्वेष और राग-द्वेष ये दो शब्दयुग्म चलते हैं। प्रश्न यह उठता है कि राग और द्वेष क्या हैं? महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में कहा है- **सुखानुशयी रागः।** - योग. २/७

अर्थात् जिस वस्तु से मनुष्य को सुख की प्राप्ति हो, उसकी प्राप्ति की बार-बार इच्छा होने को राग कहते हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने दूसरा सूत्र दिया है- **दुःखानुशयी द्वेषः।** - योग. २/८

अर्थात् जिस वस्तु अथवा व्यक्ति से दुःख की प्राप्ति हो, उससे परे रहने की इच्छा का मन में होना द्वेष कहलाता है।

वैसे तो प्रत्येक मनोविकार से ऊँचा उठना कठिन है, परन्तु द्वेष से ऊँचा उठना तो बहुत ही कठिन है। इसके लिए मानसिक निर्मलता की बहुत आवश्यकता है। जो हमारी अर्थ-हानि और मान-हानि का कारण बने, उसे हम कोई हानि न पहुँचायें अथवा उसका अपमान न करें, यह बात तो जँचती है, परन्तु उससे परे रहने की इच्छा को भी मन में न रखें, यह क्या कम साधना की बात है? इस ऊँचाई तक पहुँचने के लिए बहुत अधिक आत्मिक बल की आवश्यकता है। **क्रमशः ....**

माइंड लिंचिंग

मर्यादाओं का क्षरण

आज के परिवेश में आँखें खोलने वाला युवा संभवतः हमारी बात से सहमत न हो परन्तु आज का हाहाकार अंग्रेजों और बाद में उनका अनुसरण करने वालों की माइंड लिंचिंग का ही एक्सटेंशन है। चारित्रिक रूप से सर्वोपरि स्थान पर रहने वाले भारत में आज घोर नरक की स्थापना क्योंकर हो गयी? गार्गी, घोषा, अपाला, सीता, सावित्री के देश में आज नारी सम्मान के चीथड़े क्यों उड़ रहे हैं? जहाँ तक हमारा ज्ञान है भारतीय संस्कृति में एकपतिव्रत तथा एकपत्नीव्रत का आदर्श ही रहा है। इतिहास के किन्हीं कालखण्डों में बहुपत्नी प्रथा भी देखने को मिलती है, पर वह आदर्श कभी नहीं मानी गयी। दशरथ के अनेक पत्नियाँ थीं तो राम ने इस प्रथा को समाप्त कर दिया। शूर्पनखां के प्रस्ताव का क्या हश्र हुआ आप सभी जानते हैं। वस्तुतः सदाचार भारतीय आर्य संस्कृति का केन्द्र बिन्दु था। सदाचारी, सच्चरित्र संतान का निर्माण करना मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य था। वेद ने आदेश दिया है- **'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्'**

आपको स्वयं मनुष्य बनकर दिव्य संतानों को जन्म देना है। वर्णाश्रम धर्म (व्यवस्था) का पालन इसका उपाय है। आश्रम व्यवस्था में अर्थ और काम का स्वागत किया गया है परन्तु नियमन के साथ। ब्रह्मचर्य आश्रम में 'काम-चिन्तन' मात्र से सर्वथा दूर रहकर मनुष्य निर्माण के विशेषज्ञों की देखरेख में विद्या प्राप्त करनी है। यह विद्या केवल आजीविका प्राप्त करने योग्य नहीं बनाती थी बल्कि अभ्युदय के साथ निःश्रेयस प्राप्त करने की योग्यता पैदा करती थी। 'अध्यात्म' प्रतिक्षण जीवन में साथ रह अति भौतिकता से रक्षा करता था। इसके बाद श्रेष्ठतम युवक युवतियाँ वर्णानुकूल विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। जहाँ 'अर्थ' के ऊपर 'धर्म' का नियंत्रण स्थापित किया गया था, वहाँ 'काम' के ऊपर मर्यादा यह थी कि केवल संतानोत्पत्ति के निमित्त दम्पति काम-व्यवहार में प्रवृत्त होते थे। वर्तमान पीढ़ी इसे थोथा आदर्श बता सकती है, पर प्राचीन भारत में इसका अनुकरण किया जाता था। भगवान श्री राम तथा सीता माता वन में १३ वर्ष साथ रहे। ब्रह्मचर्यपूर्वक इस समय को बिताकर जब १४ वर्ष बाद अयोध्या लौटे, तब संतानोत्पत्ति में प्रवृत्त हुए। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि 'हमने १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक तपस्या की तब जिस पुत्र को उत्पन्न किया वह यह प्रद्युम्न मेरा पुत्र है।'

वानप्रस्थ में पत्नी को साथ अवश्य रखा जा सकता है परन्तु विषय-प्रसंग का निषेध है। और संन्यास तो श्रेष्ठतम वैराग्य का मूर्तरूप है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष भारतीय परम्परा में चार सीढ़ियाँ बतायी गयीं हैं जिनके माध्यम से अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति संभव है परन्तु इसमें अर्थ और काम का स्थान सीमित है। दोनों को गृहस्थ तक सीमित किया गया है। गृहस्थ आश्रम के अतिरिक्त तीनों आश्रमों में अर्थ तथा काम का सेवन वा उपाय निषिद्ध हैं। जब तक इस व्यवस्था का अनुपालन होता रहा भारत में तब तक सदाचार सर्वोपरि रहा। इसीलिए श्रीराम के पूर्वज महाराज अश्वपति कह सके थे-

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्ना विद्वान् स्वैरी स्वैरिणी कुतः।। - छान्दोग्य. ५/११/५

एक शासक घोषणापूर्वक अपने राज्य में व्यभिचारी पुरुष तथा स्त्रियों के अभाव की बात कहता है। बलात्कार की बात तो जाने दीजिये। महाभारत के पूर्व तक वैदिक संस्कृति के उच्च तथा उदात्त तत्वों का जनजीवन में स्वाभाविक रूप से प्रवेश था। महाभारत तक वैदिक आदर्शों के विपरीत बहुपत्नीत्व, मद्य, जुए जैसे वेद-निन्दित कर्मों का प्रवेश तो हो चुका था परन्तु

बलात्कार से संभवतः भारत अभी अनजान ही था। जिस प्रकार रावण सीता को अपहृत करके तो ले गया था परन्तु पत्नी बनने हेतु निवेदन करता रहा, डराता रहा परन्तु बल प्रयोग नहीं किया (चाहता तो उसे सीता से बलात् सम्बन्ध बनाने से लंका में कौन रोक सकता था?)। उसी प्रकार महाभारत काल में दुष्ट, मद्यप, विराट्नगर में सर्वोपरि सत्ता रखने वाला कीचक सैरंध्री (द्रौपदी) से प्रणय निवेदन तो करता रहा परन्तु बल-प्रयोग उसने भी नहीं किया और भीम के हाथों मारा गया। कमलाकर तिवारी अपनी पुस्तक में ठीक ही लिखते हैं-

'हमारी संस्कृति का आधार था हमारा वर्णाश्रम धर्म। आश्रम धर्म में वैयक्तिक स्वतंत्रता, वर्ण धर्म में सामाजिक स्वतंत्रता तथा वर्णाश्रम धर्म में राष्ट्रीय स्वतंत्रता का मूल मंत्र है। आश्रम धर्म हमारी अपनी विशिष्टता है। इसकी उपयोगिता सिर्फ हिन्दू धर्म ने समझी। स्वाधीनता के इस स्वरूप का चिन्तन और इसका व्यावहारिक प्रयोग सिर्फ हिन्दुओं ने किया है। जो माया मोह के अधीन हैं, शुभाशुभ कर्मों के अधीन हैं, काम क्रोधादि सरीखे सबल शत्रुओं के अधीन हैं, विलास वासनाओं के अधीन हैं, वे स्वाधीन कैसे हो सकते हैं?

ब्रह्मचर्य धर्म हमारी शारीरिक और मानसिक पुष्टता की पूर्ति करता है। गृहस्थाश्रम हमको कर्तव्य और परम्परा की रक्षा करने का उपदेश देता है। व्यक्ति से समाज बनता है। अतः ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थाश्रम की श्रेणी से होकर जाने वाले स्वस्थ और सबल मनुष्यों के निमित्त से समाज स्वस्थ और शक्तिशाली होगा। और यह सामान्य निर्देश है कि शक्तिशाली स्वाधीन हो सकता है।'

यह सोच अब हमारे मध्य आदर की पात्र नहीं रही है। जबकि स्वाधीन न होकर इन्द्रियों की आधीनता ही समस्त समस्याओं का मूल कारण है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि जो आर्य मनु निर्देशित **'स्वस्य च प्रियमात्मनः'** को धर्म मानते थे अर्थात् उनका मानना था कि जो स्वयं को प्रिय है वही धर्म है, दूसरे शब्दों में कहें तो- 'जैसा व्यवहार हम दूसरों से अपने प्रति चाहते हैं वैसा ही हम दूसरों के साथ करें, यही धर्म है, यही जीवन जीने की कला है, और यही आर्यों का मूल मन्त्र था। कौन चाहेगा कि कोई हमारी अस्मिता का हरण करे? तो इसके लिए आवश्यक है कि हम भी किसी की अस्मिता पर आक्रमण न करें। यह सूत्र कब हमसे छूट गया?

ब्रह्मचर्य से ओतप्रोत जीवनचर्या के चलते भारतीय जनमानस व्यभिचार आदि दुष्कर्मों से परे ही रहता था। महिलाओं की इज्जत करना धर्म माना जाता था। भारतीय विजेताओं ने भी सदैव पराजित समाज की महिलाओं का आदर किया है। महाराज छत्रपति शिवाजी के जीवन की एक घटना आती है- मुगलों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् शिवाजी के एक नायक ने पराजित मुगल सरदार की एक अत्यन्त रूपसी बहू को शिवाजी महाराज के समक्ष यह सोचकर प्रस्तुत किया कि महाराज इससे प्रसन्न होंगे। शिवाजी उसके सौन्दर्य को अपलक देखते रह गए। उनके सरदारों को बड़ा आश्चर्य हुआ तो शिवाजी ने स्पष्ट किया कि वे सोच रहे थे कि काश उनकी माता जीजा बाई इतनी सुन्दर होतीं। शिवाजी ने अपने सरदार की इस कुकृत्य के लिए भर्त्सना करते हुए उस महिला को ससम्मान वापस लौटा दिया। ऐसा ही आदर्श जब अमरसिंह एक मुस्लिम महिला को लेकर आये तब महाराणा प्रताप ने प्रस्तुत किया। भारतीय इतिहास में ऐसे प्रकरण सामान्य हैं।

परन्तु विदेशी विजेताओं ने विजय के पश्चात् न केवल धनादि की लूटपाट की बल्कि पराजित महिलाओं के साथ ऐसी दरिन्दगी की कि सुनकर भी रूह काँप जाय।

हमारा मानना है कि दूसरे के स्वत्व के अपहरण की प्रवृत्ति का प्रवेश विदेशी आक्रान्ताओं के साथ हुआ। क्योंकि उनकी वृत्तियाँ ऐसी थीं। रोमन साम्राज्य इस कलंक से अपना दामन संभवतः नहीं छुड़ा सकता। रोमन साम्राज्य के इतिहास में बलात्कार व नृशंसता का वर्णन मिलता है। रोमन इतिहासकार लिवी ने लिखा है- रोमन नेता रोमूलस (Romulus) ने एक धार्मिक उत्सव आयोजित किया जिसमें पड़ौस की सेबाइन (Sabine) जाति के लोगों को बुलाया। मुफ्त मद्य तथा भोजन लालच भी थे। नेता के इशारे पर रोमन लोगों ने आक्रमण करके Sabine पुरुषों को मार दिया और उनकी स्त्रियों को ले गए। (कुछ इतिहासज्ञ इसे Myth भी मानते हैं)

रोमन साम्राज्य की विस्तारवादी नीतियों तथा क्रूरता की एक कहानी और उसके प्रतिकार में की गयी नृशंसता की गाथा भी

मिलती है। जब ४५वीं शताब्दी में रोम ने ब्रिटेन पर आधिपत्य स्थापित किया तो Iceni tribe सदैव उनके रास्ते का कांटा बनी रही। राजा के मरने के पश्चात् रोम ने उनके राज्य को अपने अधीन घोषित कर दिया पर रानी Boudicca ने इसे स्वीकार नहीं किया। तो रोमन सिपाहियों ने रानी पर सरेआम कोड़े बरसाए तथा उसे मजबूर किया कि वह अपनी बेटियों पर होता हुआ बलात्कार देखे। इसके बाद रानी ने एक सेना का गठन कर लन्दन पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया। तब रानी के सैनिकों ने वहाँ जितनी रोमन स्त्रियाँ थीं उनके साथ जिस क्रूरता का व्यवहार किया, उनके स्तन काट दिए, वह सब भारत विभाजन के समय की क्रूर गाथाओं की याद दिलाता है। अभारतीय इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है। बलात्कार का भारत में गहन प्रवेश मुगल आक्रान्ताओं के साथ हुआ जो पराजित जाति को, उनकी स्त्रियों का शील भंग कर, अपमानित करना विजेता की निशानी तथा अधिकार समझते थे। ताजरीयत अल असर के अनुसार सन् १३५७ में जब फिरोजशाह तुगलक ने भारत को विजित किया तो हिन्दू महिलाओं का केवल शील ही भंग नहीं किया वरन उनके गुप्तांगों के साथ जो बर्बरता की गयी वह अवर्णनीय ही है। उसे पढ़कर रूह काँप उठती है और जो बर्बरता निर्भया के साथ की गयी वह भी तुच्छ जान पड़ती है। वस्तुतः ७१२ ई. में मुहम्मदबिन कासिम से लेकर तैमूर लंग तक का इतिहास इन रक्तरंजित वर्णनों से भरा पड़ा है। मुगलों की इसी प्रसिद्धि के कारण मुगल काल में भारत में जौहर की घटनाओं का वर्णन मिलता है।

परन्तु भारत की स्थिति ऐसी नहीं थी जब तक भारतीय संस्कृति हमारे समाज की दृष्टि में मूल्यवान रही। हो सकता है हम भौतिक उन्नति में कहीं पिछड़ गए हों पर चरित्र की दृष्टि से, सदाचार की दृष्टि से कितने उच्च रहे इसके गुण तो विदेशी इतिहासकारों तथा पर्यटकों ने मुक्त कण्ठ से गाये हैं। आप मेगस्थनीज, फाह्यान, ह्वेनसांग और यहाँ तक कि अलबरूनी और अबुल फजल के विवरण पढ़ लीजिये।

आइने अकबरी (अबुल फजल)- हिन्दू लोग धार्मिक, सहनशील, नम्र, प्रसन्नमुख, न्यायप्रिय, त्यागी, अपरिग्रही, व्यापारी एवं व्यवहार कुशल, सत्यनिष्ठ एवं सत्य प्रशंसक, कृतज्ञ तथा असीम प्रभुभक्त होते हैं। (यह असीम प्रभुभक्ति ही समस्त बुराईयों से दूर रखती थी।)

कर्नल स्लीमैन- जो भारत के ग्राम्य जीवन को नहीं जानता वह भारत के बारे में कुछ नहीं जानता। गाँव की पंचायतों में ग्रामीणजन धर्म से भी एवं अपने स्वभाव से भी बाधित होकर सत्य ही बोलते हैं और हमारे पास शतशः उदाहरण हैं जहाँ केवल तनिक सा झूठ बोलकर अपना धन, जन या प्राण बचाए जा सकते थे, फिर भी लोगों ने असत्य का सहारा नहीं लिया।'....... वह जानता है कि उसकी गुप्त से गुप्त बात भी ऊपर बैठा हुआ देवता जानता है और यदि वह स्वार्थान्ध होकर असत्य भाषण करके लौकिक दण्ड विधान से बच भी गया तो दैविक दण्ड का भागी तो उसे बनना ही पड़ेगा। और यह दैविक दण्ड लौकिक दण्ड से सर्वथा भयंकर ही होता है। .... प्रत्येक हिन्दू यह मानता है कि उसके सत्य या असत्य भाषण के फलस्वरूप उसके पितरों को स्वर्ग या नरक में जाना पड़ता है। ('हम भारत से क्या सीखें'- मैक्समूलर)

मैगस्थनीज सैल्यूकस का राजदूत था। चन्द्रगुप्त के दरबार में रहता था। उसने लिखा- भारतीयों में चोरी की बात तो शायद ही कभी सुनाई पड़ती थी। और सदैव सत्य एवं पवित्रता को आदरणीय मानते थे।'

पर यह सब सदाचार पाश्चात्य प्रभाव में अब बुर्जुआ हो गया है। आज आप ब्रह्मचर्य, नियंत्रित उद्देश्यपूर्ण काम सम्बन्ध, तथा सहशिक्षा निषेध की बात करेंगे तो सिर्फ हँसी के पात्र बनेंगे। पर वास्तविकता यही है कि जब तक उक्त गुणों की महत्ता को न समझा जाएगा तब तक कितने भी कठोर कानून बलात्कारियों को दण्ड देने के बना लें (यहाँ हम अधिकाधिक संभव दण्ड के पक्ष में हैं क्योंकि 'भय बिन प्रीति न होत गुंसाईं' भी एक सही नीति है)। विशेष प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। आप स्वयं देख लीजिये हैदराबाद बलात्कार के अभियुक्तों को गोली मार दी गयी। क्या २-४ दिन भी शान्ति रही? नहीं। दूसरे दिन पुनः अखबार में बर्बर व शर्मनाक कृत्य की सूचना थी। बी.बी.सी. न्यूज ने सही लिखा है It's about men not the place। जी, अगर वास्तव में मनुष्य, मनुष्य है और समाज, समाज तो ऐसे वीभत्स कार्य हो ही नहीं सकते। आज तो मानव पशुपन से भी गिर चुका है। पशुओं के झुण्ड को 'समज' और मानवों के समूह को 'समाज' कहते हैं। विवेक और धर्म दोनों को अलग करते हैं। विवेक और धर्म से ही संस्कार बनते हैं। यह कार्य प्रारम्भ में माता-पिता करते हैं फिर आचार्य। पर आज तो रिश्ते भी

तार-तार हो गए हैं। एक भाई अपनी बहिन के घर जाता है। दरवाजा खोलते ही अपने जीजा को ईंट से मार देता है। फिर बहिन पर आक्रमण करता है और बलात्कार करता है तथा यही सब भांजी के साथ करता है। बताएँ यह पशु है या मनुष्य? हमने आचार्य के सान्निध्य में चरित्र निर्माण की बात कही थी। पर आज क्या कोई शिक्षक की गारण्टी ले सकता है? दोटासर के सैनिक स्कूल में क्या हुआ? शिक्षक रूपी हैवान ने १२ बच्चों के साथ कुकर्म किया। वशिष्ठ, विश्वामित्र, चाणक्य की परम्परा कहाँ विलुप्त हो गयी?

टोंक की ट्विंकल आयु मात्र ५ वर्ष, अभियुक्त पड़ौसी, रोज टॉफी देता था, लाड लड़ाता था। एक दिन उसके स्कूल से पीछे जंगल में ले गया। ट्विंकल की लाश के पास मिले टाफियों के खाली रैपर बता रहे हैं कि बच्ची को अंकल के साथ जाना कुछ अजीब न लगा। पर उस दिन वो अंकल हैवान बन गया। दरिन्दगी की सारी हदें पार कर गया। ट्विंकल की बेल्ट ही गले से बाँध उसका गला घोंट दिया। दरिन्दगी ऐसी कि दादा का कहना था कि एक बार कोई उसका नोचा हुआ शरीर देख ले तो वो सो नहीं सकता। जब अभियुक्त पकड़ा गया तो पुलिस को बताया कि वो शराब के नशे में था। बताइये यह पशु है या मनुष्य।

आश्चर्य की बात यह है कि बलात्कार की समस्त घटनाओं में अजनबियों द्वारा किये गए आक्रमण की संख्या अत्यन्त कम है जान-पहचान वालों की अधिक। एक पत्रकार **रुक्मिणी श्रीनिवासन** ने बलात्कार की उन घटनाओं पर शोध किया। जिन पर कि अदालतों में पूरा मुकदमा चला। उन्होंने दिल्ली जिला अदालत के १९९२ के ऐसे ३५९ मुकदमों का अध्ययन किया। जिनमें केवल २ प्रतिशत आक्रमण पूर्णतः अजनबियों द्वारा किये गए बाकी किसी न किसी रूप में परिचित थे, और इनमें ३० प्रतिशत तो अत्यन्त करीबी या रिश्तेदार थे।

पाठक कह सकते हैं इसमें माइंड लिंचिंग कहाँ है? हम अभी निवेदन करेंगे। मैकाले की योजनान्तर्गत ऐसे भारतीयों को तैयार किया जाना था जो देखने में तो भारतीय लगें पर वे मष्तिष्क-बुद्धि-सभ्यता-संस्कृति से अंग्रेज ही हों। यह कार्य १००० प्रतिशत सफल हुआ। अंग्रेजों के जाने के पश्चात् स्वतन्त्र भारत ने धीरे-धीरे पाश्चात्य प्रभाव की श्रेष्ठता को स्थापित किया। इसमें दो पीढ़ियाँ लग गयीं। पर जब किसी भी दृष्टि से इस प्रवृत्ति का कोई विरोध नहीं हुआ बल्कि इस दिशा में उत्साह ही दिखा तो सारे संशय समाप्त हो गए। अब तेजी के साथ उनका अनुकरण ही नहीं वरन् उनसे आगे निकलने की होड़ लग गयी। जिन्होंने भी इस मार्ग के काँटों से सचेत किया अथवा अपने प्राचीन सिद्धान्तों, जीवन शैली का उदाहरण दे सावचेत किया कि यह मार्ग मानवता के लिए पतन का मार्ग है, उन्हें हिकारत की नजरों से देखा गया। उनका व नयी पीढ़ी का भ्रम-भंजन करने के लिए brain wash करने के लिए मैकाले के मानस पुत्रों द्वारा हमारे इतिहास को विकृत किया गया। प्राचीन भारत के इतिहास में उपस्थित तमाम उदात्त तथा नैतिक तत्त्वों के प्रभाव को दूर करने हेतु जहाँ एक ओर उसको प्रागैतिहासिक काल की कल्पना कर **Myth** बना दिया गया वहीं मध्यकालीन भारत में कुछ ताकतवर तथाकथित सम्भ्रान्त समूहों द्वारा जो अमानुषिक परम्पराएँ स्थापित की गयीं उन्हीं को भारत का प्रतिबिम्ब बना दिया गया। उसके पीछे झांकना असंभवप्रायः हो गया। अब हमारे पास हमारे चरित्र निर्माण के लिए कुछ भी प्रेरक न था। समाज में जो चारित्रिक पतन की तीव्र फिसलन प्रारम्भ हुई तो उसे रोकने वाला कोई न था। **क्रमशः ....**

- अशोक आर्य
चलभाष- ०९३१४२३५१०१, ०८००५८०८४८५

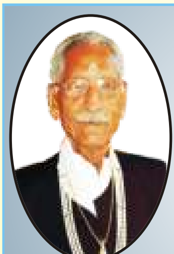
जीवन सुखमय रहे हमेशा,
हर पल हो उत्कर्ष।
मंजिल बढ़कर गले लगाये,
पाएँ हर पल हर्ष।।
सत्यार्थ सौरभ
घर-घर पहुँचावें।
कर्मयोगी महाशय धर्मपाल
अध्यक्ष - न्यास

अनेक विशेषताओं से युक्त १८८४ के मूल सत्यार्थप्रकाश के सर्वाधिक नजदीक, तत्कालीन शैली का संरक्षण, मुद्रण अशुद्धियों से रहित
सत्यार्थप्रकाश
अवश्य खरीदें।
घाटे की पूर्ति पूर्ववत् दानदाताओं के सहयोग से ही संभव होगी। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि सत्यार्थप्रकाश प्रेमी इस कार्य में आगे आवेंगे।
श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, नवलखा महल, गुलाबबाग, उदयपुर - ३१३००१
अब मात्र कीमत ₹ 45 में
४००० रु. सैंकड़ा
शीघ्र मंगवाएँ

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वि-जन्मशताब्दी लेखमाला

२

मूलशंकर के पिता करसन जी एक धर्मप्रवण शिवभक्त ब्राह्मण थे। उनके ऊपर राजस्व एकत्रित करने का दायित्व था। अधिकारों से युक्त पद होते हुए भी वे धार्मिक आस्थाओं का कठोरता से पालन करते थे व परिजनों से भी पालन करवाते थे। जब मूलशंकर आठ साल के हुए तो उनका यज्ञोपवीत संस्कार करवाकर, उन्हें गायत्री, संध्या व उसकी क्रिया सिखा दी गई। यजुर्वेद की संहिता का पाठ भी आरम्भ करवा दिया। पिता अपने पुत्र को भी अपने समान शिवभक्त बनाना चाहते थे।

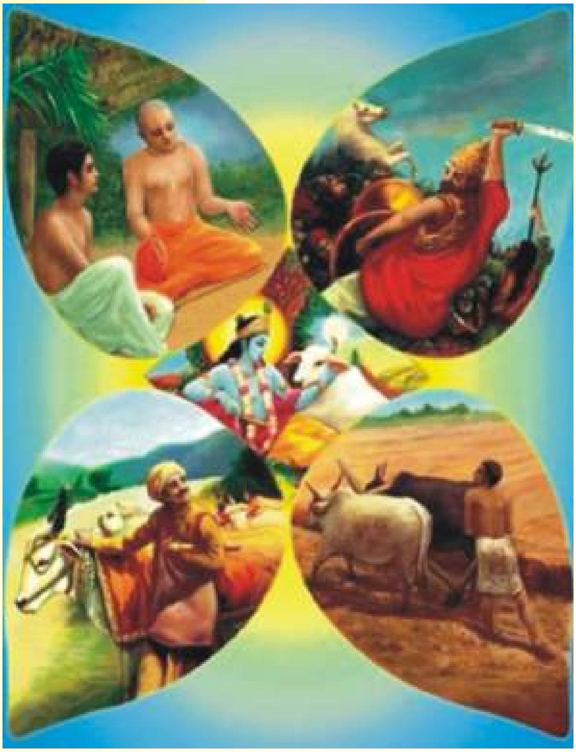

समरसता के सूत्रधार महर्षि दयानन्द

वैदिक कालीन वर्णव्यवस्था कालान्तर में जन्माधारित जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी। इसका मुख्य दोष अपनी श्रेष्ठता को स्थापित करने के प्रबल इच्छुक ब्राह्मण वर्ग को जाता है। जब वेदों का ज्ञान प्रमाद और स्वाध्यायहीनता के कारण आर्यों के मध्य से विलुप्त हो गया तब ब्राह्मण वर्ग को अवसर मिल गया कि वे वेद के नाम पर आम जनता के समक्ष कुछ भी परोस सकते थे। इसी बात ने उन्हें अवसर प्रदान कर दिया कि वे वर्ण व्यवस्था का अपने मनोनुकूल संस्करण जनता के समक्ष प्रस्तुत करदें। वेद की वर्ण व्यवस्था योग्यता पर निर्भर थी। ब्राह्मण का पुत्र यदि योग्य न हो, दुराचारी हो जाय तो वह अपनी श्रेणी से बहिष्कृत हो जाएगा वहीं शूद्र पिता का पुत्र अपने विद्याबल तथा सदाचार के आधार पर ब्राह्मण बन जाएगा। यह व्यवस्था तत्कालीन ब्राह्मण वर्ग के मनोनुकूल नहीं थी। वे अपने ब्राह्मणत्व में स्थायित्व चाहते थे चाहे उनमें किसी प्रकार की योग्यता हो या न हो। अतः जन्माधारित जाति व्यवस्था को ही वेदप्रणीत वर्ण व्यवस्था के रूप में प्रचारित कर दिया गया। वेदविद्याविहीन शासकों से इसे संरक्षण प्राप्त हो गया। बस फिर क्या था। जाति व्यवस्था रूढ़ हो गयी और असमानता की खाई इतनी गहरी हो गयी कि इसके अमानवीय होने का अहसास भी खत्म हो गया। जिस भारत में कभी दासप्रथा ने अपनी झलक भी नहीं दिखायी थी वहाँ निम्न जातियों पर ऐसे ऐसे अत्याचार किये जाने लगे कि उनका वर्णन भी किसी सहृदय व्यक्ति की रूह को कंपा सकता है। उस पर तुर्रा यह कि अत्याचार करने वाले और अत्याचार सहने वाले इसे स्वाभाविक मानते थे, तथाकथित निम्न जाति के लोग इसे अपनी नियति मानते थे। अतः किसी प्रकार का आक्रोश नजर नहीं आता था। तथाकथित नीच जाति में जन्म लेने वाला सदैव नीच जाति में ही रहेगा चाहे वह कितनी भी उन्नति कर ले, संतोष यहीं तक नहीं किया गया उस तथाकथित नीच समुदाय के साथ अस्पृश्यता का ऐसा जोड़ लगाया कि मानवता भी काँप उठी।

भारतीय नवजागरण के पुरोधा के रूप में एक औदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न महापुरुष स्वामी दयानन्द ने ही अंततः इस अमानवीय गतिहीन रूढ़ व्यवस्था को हर आधार पर चुनौती दी। जिन लोगों ने वेद का नाम लेकर यह व्यवस्था बनायी कि शूद्र यदि कहीं वेद मन्त्र का उच्चारण करदे तो उसकी जिह्वा का छेदन कर दिया जाय और यदि सुनले तो उसके कानों में शीशा भर दिया जाय, उन्हें दयानन्द ने चुनौती दी कि वे एक भी ऐसा वेद मन्त्र बताएँ जिसमें यह अमानवीय व्यवस्था दी गयी हो। अब पण्डितों के पसीने निकल गए क्योंकि उन्होंने कौनसा वेदों का अध्ययन किया था। उन्होंने तो यह व्यवस्था मनमाने ढंग से बनायी थी बस स्वीकार्यता की दृष्टि से नाम वेदों का ले दिया था। इस पर ही दयानन्द ने घोषणा की कि मानव-मानव में विभेद करने वाली कोई व्यवस्था वेद में नहीं है। कोई किसी भी कुल में जन्म ले, शिक्षा प्राप्त करने का तथा अपने पुरुषार्थ और बुद्धि से उन्नति करने का अधिकार सभी को है। जो पुरुषार्थ नहीं करेगा, विद्या ग्रहण रूपी तप नहीं करेगा अथवा उसमें बुद्धि अथवा टेलेंट की कमी रहेगी तो वह अवनति को प्राप्त होगा ही चाहे उसने कितने ही उच्च कुल में जन्म क्यों न लिया हो। यही स्वाभाविक व्यवस्था है और यही वेद की व्यवस्था है।

वेदप्रणीत और दयानन्द समर्थित वर्ण व्यवस्था का सार, संक्षेप में यही है कि समाज में हर प्रकार के नर-नारी होते हैं। उनके गुण-कर्म-स्वभाव और रुचियाँ भी एक जैसी नहीं होतीं। इस हिसाब से एक ही माँ-बाप के बच्चे यहाँ तक कि जुड़वा बच्चे भी एक जैसे नहीं होते। स्वस्थ सामजिक

वातावरण वही होता है जहाँ प्रत्येक को बिना किसी भेदभाव के अधिकतम उन्नति का अवसर मिले। इसके बाद कोई कितनी विद्या अर्जित करता है, उसका स्वभाव और रुचियाँ कैसी हैं, वह किस क्षेत्र में जाना चाहता है उसे पूर्ण अवसर तथा विशेषज्ञों का सहाय मिले। विद्या पूर्ण होने पर निम्न आधारों पर विशेषज्ञों द्वारा उसका वर्ण निर्धारित हो। जो

भाव इतना दृढ़मूल होकर समाज को खोखला बनाने वाला बन गया हो कि वह रण छोड़कर भागते अहमदशाह अब्दाली की विजय हेतु उसे आत्मबल प्रदान कर दे, वहाँ दयानद शूद्र मात्र को पाचन का अधिकार दे एक झटके से पटरी से उतरी हुयी रेल को पटरी पर लाने का प्रयास करते हैं।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि वैदिक व्यवस्था में, जिसे एक बार

बुद्धिजीवी हो, विद्या के पठन-पाठन में जिसकी रुचि व योग्यता विशेष हो तथा त्यागपूर्ण सात्विक वृत्ति का हो वह ब्राह्मण कहायेगा, जो शारीरिक बल के सम्पादन में श्रेष्ठ हो, साहस और निडरता की प्रतिमूर्ति हो वह क्षत्रिय और जो उत्पादन और वितरण की योग्यता और रुचि रखता हो वह वैश्य कहलायेगा। अब यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि हर दौर में, हर व्यवस्था में, समान अवसर दिए जाने पर भी विद्या व क्षमता का अर्जन प्रत्येक का अलग-अलग होता है और कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके साथ कितना भी प्रयत्न किया जाय वह किसी भी क्षेत्र में उन्नति नहीं कर पाते , इसी वर्ग को शूद्र कहा गया है। इसी बात को एक अन्य प्रकार से और प्रस्तुत कर देते हैं। किसी भी समाज के तीन अभाव वस्तुतः दुश्मन होते हैं- अज्ञान, अन्याय और अभाव। जो अज्ञान को दूर करने की सामर्थ्य अर्जित करते हुए तदर्थ व्रत लेते हैं वे ब्राह्मण होते हैं, जो बलिष्ठ और निडर व्यक्ति समाज से अन्याय दूर करने का संकल्प लेते हैं वे क्षत्रिय कहलाते हैं और इसी प्रकार जो व्यक्ति समाज से अभाव को दूर करने का निश्चय करते हैं वे वैश्य होते हैं। और जो उक्त तीनों अभावों में से किसी को भी दूर करने की योग्यता अर्जित नहीं कर पाते वे शूद्र कहलाते है। यह अवश्य ध्यान रखें कि वैदिक व्यवस्था तथा दयानन्द की दृष्टि में ये शूद्र न अस्पृश्य हैं न लघु हैं, इसीलिए दयानन्द व्यवस्था देते हैं कि शूद्र द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के घरों में खाना बनावें।

जिस देश की विकृत व्यवस्था में चौके चूल्हे ने धर्म का रूप ले लिया हो और पाचन का कार्य भी ब्राह्मण का मान लिया गया हो और भोजन-आपात्काल में भी इसी व्यवस्था में बना यह

शूद्र पद मिला हो वह सदैव शूद्र रहेगा ऐसा नहीं है। समय के किसी भी मोड़ पर यह शूद्र अगर योग्यता अर्जित कर लेगा और नयी योग्यता के अनुसार कर्म संपादित करने लगेगा तो वह तदनुरूप वर्ण में प्रवेश कर लेगा। यह कुछ ऐसा ही है जैसे आजकल पढ़ाई करने के पश्चात् पूर्णतः अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार (जिसमें कुल, वंश, मजहब, लिंग का कोई व्यवधान नहीं होगा) कोई अध्यापक, वैज्ञानिक, चिकित्सक, अभियन्ता आदि बनकर काम करता है, कोई सेना, पुलिस आदि में काम करता है तो कोई व्यापार, उत्पादन, कृषि के क्षेत्र में कार्य करता है और कोई वैसी कोई योग्यता न होने के कारण उपरोक्त के सहायक के रूप में काम करता है। परन्तु यह सहायक अगर कालान्तर में अपेक्षित योग्यता अर्जित करले तो पदोन्नति प्राप्त कर उच्च पद प्राप्त कर सकता है। इस क्रम में वर्ण भी परिवर्तित कर सकता है। हम ऐसे आई.आई.टी. उत्तीर्ण लोगों को जानते हैं जिन्होंने बाद में स्वयं का व्यापार प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार वे ब्राह्मण से वैश्य बन गए। आज भी कोई चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी विभागीय परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर प्रमोशन प्राप्त कर अन्य वर्णों में प्रवेश कर लेता है। वर्ण निर्धारण में यह गतिशीलता और जन्म की बजाय गुणों व योग्यता का आधार, वैदिक वर्ण व्यवस्था को स्वाभाविक व समाज में समरसता स्थापित करने वाली व्यवस्था सिद्ध करता है।

घृणा तक की जनक, भारतीय समाज की विभाजक, इस जन्माधारित जातिव्यवस्था ने देश की जैसी दुर्दशा की थी उसे दूर किये बिना किसी प्रकार का सुधार संभव नहीं, इस बात को दयानन्द ने समझ लिया था। अतः उन्होंने इस विनाशक

व्यवस्था को धूलधूसरित करने हेतु जो व्यवस्था सुझायी, आर्यसमाज ने अपने प्रारम्भिक काल में उसे अपनाकर उसके औचित्य को सिद्ध कर दिया। पर शोक इस बात का है मैकाले के गुलाम हमारे नेताओं ने दयानन्द की उपेक्षा की और राजनीति ने इस विषबेल को दूध पिलाकर आज एक और वर्ग संघर्ष की राह प्रशस्त कर दी है। खैर जो भी हो पाठकों के विचारार्थ इस बीमारी के इलाज हेतु दयानन्द की जो रामबाण दवा थी वह हम प्रस्तुत कर रहे हैं। इसके मुख्य-मुख्य घटक निम्नांकित हैं-

1. अनिवार्य शिक्षा- कोई घर ऐसा न हो (चाहे राजा का हो या रंक का, गरीब का हो या अमीर का, तथाकथित उच्च जाति का हो या निम्न जाति का) जहाँ ८ वर्ष के पश्चात् भी कोई बालक अथवा बालिका पाठशाला न गए हों।

ऋषि-व्यवस्था तो यहाँ तक है कि जो माता-पिता इस नियम का पालन न करें उन्हें राज्य व समाज दण्डित करे (अशिक्षा को निर्मूल करने हेतु ऐसी कठोर व्यवस्था तो आज भी नहीं बन पायी है)

2. समान व्यवहार- पाठशाला में सभी के साथ समान व्यवहार हो। अर्थात् आवास, भोजन, वस्त्र, पठन-पाठन आदि समस्त व्यवस्थाओं में किसी भी आधार पर कोई भेद न किया जाय। (जब शिक्षा अनिवार्य है तथा सभी को सुविधाएँ समान हैं तो शिक्षा का सम्पूर्ण व्यय समाज/राज्य करेगा)।

3. जातिसूचक सरनेम लगाने का निषेध तो दयानन्दीय व्यवस्था में सन्निहित है।

4. सम्पूर्ण अध्ययन काल में ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी का

माता-पिता, रिश्तेदारों से किसी भी माध्यम से कोई सम्पर्क नहीं रहेगा।

5. सहशिक्षा का दयानन्दीय शिक्षा व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है।

6. शिक्षा पूर्ण होने पर विशेषज्ञ आचार्यों के द्वारा छात्रों की रुचि, योग्यता के आधार पर अब उनका वर्ण निर्धारित किया जाएगा।

7. उक्त वर्ण के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सरनेम के रूप में अधिक से अधिक क्रमशः शर्मा, वर्मा, गुप्त और दास लगा सकेंगे। (आर्यसमाज द्वारा स्थापित गुरुकुलों में सरनेम के रूप में, अर्जित अकादमिक योग्यता की उपाधि लगाने का रिवाज रहा है , यथा .... विद्यालंकार, ...वेदालंकार, शास्त्री आदि। इसके अतिरिक्त 'आर्य' सरनेम के रूप में लगाया जाता है। इन नव स्नातकों की जन्माधारित जाति क्या थी यह तो अब उड़नछू हो गयी। अब तो अर्जित वर्ण ही सबके समक्ष है।)

8. पूरे अध्ययन काल में, शिक्षक के साथ-साथ माता-पिता के दायित्व का भी निर्वहन करने वाले आचार्यों से अधिक, बालक-बालिकाओं को कोई नहीं जानता है। अतः गुण-कर्म-स्वभाव के मिलान और तुल्य योग्यताओं के आधार पर अध्यापक-अध्यापिका उनके विवाह में चयन-बिन्दु पर सहयोग कर सकते हैं।

9. विवाह में केवल गुण-कर्म-स्वभाव ही महत्वपूर्ण हैं अन्य कुछ भी नहीं। स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं- चाहे लड़का-लड़की मरण पर्यन्त कुमारे रहें, परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण-कर्म-स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिये।

10. बाल्यावस्था में कदापि विवाह न हो, इस बात को राजा भी सुनिश्चित करे।

उपरोक्त १० बिन्दुओं में हमने महर्षिवर की उस महनीय योजना को समेटने का प्रयास किया है जो जन्मगत जाति के भयंकर भुजंग के एक-एक दाँत को तोड़ने की क्षमता रखती है। जन्मगत जाति के प्रदर्शन से मुक्त कर, उस पहचान को पूर्णतः महत्वहीन कर, प्रत्येक को समाज की मुख्य धारा में लाकर समरसता प्रवाहित करना दयानन्दीय योजना का मुख्य उद्देश्य है जिसमें वह पूर्णतः सफल रहे। आचार्य ने अपने दायित्व को निभाया पर राजा ने नहीं। अपने कुत्सित स्वार्थ के कारण हमारी शासन व्यवस्था ने जन्मगत जाति को असाधारण रूप से महत्त्व देकर सब कुछ विनष्ट कर दिया। हर शासकीय कागज पर आपको अपनी जन्मगत जाति का उल्लेख करना आवश्यक बना दिया। अर्थात् आप भले ही किसी भी वर्ण की योग्यता रखते हैं आपको सदैव अपनी जन्म-जाति को याद रखना होगा, वही आपकी पहचान है। रही सही कसर जात्याधारित जनगणना और आरक्षण ने पूरी करदी। अब तथाकथित निम्नजाति का सदस्य उसे छुपा नहीं

रहा बल्कि उसके लिए प्रमाणपत्र बनवा रहा है क्योंकि योग्यता को पृथक् रखकर उसे जन्म-जाति के आधार पर वरीयता दी जा रही है। इस नामाकूल जाति व्यवस्था को स्थायी रूप प्रदान करने के साथ योग्य और अयोग्यों के मध्य एक नवीन खाई का निर्माण कर इन विधि-निर्माताओं ने जो पाप किया है उसका फल तो अब संभवतः परमेश्वर ही प्रदान कर सकेगा।

प्रिय पाठकगण, स्थानाभाव के कारण हमने महर्षि दयानन्द के उक्त दिशा निर्देश को बिन्दु रूप में ही दिया है। पर हमारी शासन व्यवस्था ने सब कुछ चौपट कर दिया है अतः विस्तार से देने में भी क्या लाभ है? परन्तु इस सन्दर्भ में कुछ महापुरुषों के कथन यहाँ अवश्य उद्धृत करना चाहेंगे-

डा. बी.आर.अम्बेडकर ने लिखा था- 'स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वर्ण-व्यवस्था बुद्धिगम्य और निरुपद्रवी है।'

महात्मा गाँधी ने भी कहा था- 'अस्पृश्यता के विरुद्ध स्वामी दयानन्द की सुस्पष्ट घोषणा असंदिग्ध रूप से हमारे लिए उनके समृद्ध दाय में से एक है।'

दलितोद्धार के क्रम में आर्यसमाज के योगदान को रेखांकित करते हुए डा. बाबा साहब अम्बेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय के कुलपति प्राचार्य शिवाजीराव भोंसले ने लिखा है-' राजपथ से सुदूर दुर्गम गाँव में दलित-पुत्र को गोदी में बिठाकर सामने बैठी हुयी सुकन्या को गायत्री मन्त्र पढ़ाता हुआ एकाध नागरिक आपको दिखलायी देगा तो समझ लेना वह ऋषि दयानन्द प्रणीत आर्यसमाज का अनुयायी होगा।'

पाठकगण, कितना लिखें, कहाँ तक लिखें। जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ ऋषि ने हमारा मार्गदर्शन न किया हो। बस इस किश्त में इतना लिखते हुए लेखनी को विराम देंगे कि दयानन्द वाङ्मय के पठन-पाठन और अनुकरण से यह विश्व अत्यंत सुखकर बन सकता है यही उस विषपायी देवता की हिन्दुओं को ही क्या, भारतवासियों को ही क्या, विश्व मानवता को महान देन है।

किसी शायर ने सत्य ही लिखा है-

''गिने जाय मुमकिन है सहरा के जर्रे,
समन्दर के कतरे फलक के सितारे।
मगर कैसे मुमकिन है कि गिन सकें हम,
जो एहसां ऋषि ने किये हैं वो सारे।।''

■■■

पूरा नाम-
चलभाष-

सत्यार्थप्रकाश पहेली- ०२/२०

सत्यार्थ सौरभ सदस्य संख्या-

रिक्त स्थान भरिये- सत्यार्थप्रकाश जैसे महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय कीजिए।(नवम समुल्लास पर आधारित)- पुरस्कार प्राप्त करिये

१ अ	१	१ म	१	■	■	२	२	२ न	■
३	न ३	■	४ सू	४	श ४	४	४	■	५
६	६ भौ	६	क ६	■	■	७	७ ता	७	■

संकेत (बाएँ से दाएँ) ऊपर से नीचे न भरें।

१. त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का जो समुदाय पृथिवीमय है वह कोश क्या कहाता है?
२. जो बाहर से भीतर आता है उस प्राण को क्या कहते हैं?
३. जीव की कितनी अवस्थाएँ हैं?
४. सत्तरह तत्वों के समुदाय से जो शरीर बनता है उसे क्या कहते हैं?
५. क्या मृत्यु के पश्चात् सूक्ष्म शरीर जीव के साथ रहता है?
६. जीव जिस स्वाभाविक शरीर से मुक्ति में सुख भोगता है वह भौतिक होता है या अभौतिक?
७. शरीरस्थ कोषों व अवस्थाओं से जीव पृथक् होता है या नहीं?

सत्यार्थ प्रकाश पहेली- १२/१९ का सही उत्तर

१. शरीर वाले	२. होती हैं	३. मरणधर्मा
४. नित्य	५. शरीर रहित	६. वेदा

''विस्तृत नियम पृष्ठ २४ पर पढ़ें एवं ₹५१०० पुरस्कार प्राप्त करें।''

कार्यालय में हल की हुई पहेली प्राप्त करने की अन्तिम तिथि- १५ मार्च २०२०

हम भद्र-देखें

परमात्मा न्यायकारी है अतः वह हमारे कर्मों के आधार पर ही न्याय करता है। उसकी न्याय-व्यवस्था में जरा सी भी भूल-चूक होने की कोई संभावना नहीं है और न ही परमात्मा किसी की सिफारिश आदि से हमारे पाप-कर्मों को क्षमा करता है। अपने पुण्य कर्मों के आधार पर ही परमात्मा ने हमें यह मानव-शरीर प्रदान किया है। वेद में कहा गया है-

विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः।
सवितारं नृचक्षसम्।। - यजु. ३०/४

परमात्मा ने हमें हमारे कर्मानुसार यह शरीर तो दिया ही मगर साथ में और क्या कुछ दिया यह भी चिन्तन करने की बात है। परमात्मा ने आत्मा को दो प्रकार के करण (उपकरण) दिए हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ये वाह्यकरण तथा मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार (स्व-स्मृति) ये अन्तःकरण दिए हैं। अब हमारा यह दायित्व है कि इन बाह्य एवं अन्तःकरण का सदुपयोग करके अपने जीवन को भद्रता से परिपूर्ण करें। वेद हमें आदेश देता है-

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।
- यजु. २५/२१

(देवाः) ज्ञान-ज्योति देने वाले विद्वानों! आपकी उपदेश वाणियों से हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रं) कल्याण व सुखकर शब्दों को ही (शृणुयाम्)सुनें। (यजत्राः) अपने संग व ज्ञानदान से हमारा त्राण करने वाले विद्वानों! (अक्षभिः) हम प्रभु से दी गई इन आँखों से (भद्रम्) शुभ को ही (पश्येम्) देखें। हम कभी किसी की बुराई को न देखें.... (स्थिरैः अंगैः) दृढ़ अंगों से तथा (तनूभिः) विस्तृत शक्ति वाले शरीरों से (तुष्टुवांसः) सदा प्रभु का स्तवन करते हुए, उस आयु को (व्यशेमहि) प्राप्त करें, (यत् आयुः) जो जीवन (देवहितम्) देव के उपासन के योग्य है अर्थात् जो अपने कर्त्तव्यों को करने के द्वारा प्रभु की अर्चना में बीतता है....

छान्दो. उप. ३/१८/२ में कहा गया है कि ब्रह्म के चार चरण हैं- वाक्, प्राण, चक्षु और श्रोत्र। हम अपनी आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों का कैसे सदुपयोग करें इसके दिशानिर्देश उपरोक्त मन्त्र में दिए गए हैं। हम भद्र ही सुनें, भद्र ही देखें, भद्र ही बोलें और इस प्रकार अदीन होकर हम अपने जीवन को देवों के सदृश व्यतीत करें। हम स्वयं को प्रभु के उपासन के योग्य बनाएँ....पीछे हमने भद्र सुनने की चर्चा की है, यहाँ भद्र देखने पर चर्चा करेंगे- 'भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा' हम जीवन में सर्वत्र इन आँखों से भद्रता ही देखें.... हमारी दृष्टि अभद्र न हो... कहा भी गया है कि जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि अर्थात् हमारे हृदय में जिस प्रकार के विचार होंगे संसार हमें वैसा ही दिखाई देगा.... भीतर यदि कामवासना के विचार भरे हुए हैं तो संसार में उसे वही दिखाई देगी.... इसी प्रकार यदि लोभ, मोह व अंहकार आदि हैं तो उस व्यक्ति का व्यवहार वैसा-वैसा ही होगा इसलिए हमें वह पावनता अपने भीतर लानी होगी कि हमें संसार में जीवन का उज्ज्वल पक्ष ही दिखाई दे.... हमारे जीवन में किसी प्रकार के भी नकारात्मक विचार व भाव न आएँ बल्कि हम संसार में जिस भी घटना-दुर्घटना को देखें उससे सकारात्मक प्रेरणा ही ग्रहण करें। ऐसा स्वभाव बन जाने पर व्यक्ति हर समस्या का समाधान खोजने में सफल हो जाता है। एक और महत्वपूर्ण गुण हम यह धारण करें कि हम दूसरों के गुणों को देखें, अवगुणों को नहीं। ऐसा स्वभाव बनने से हमें बुरे से बुरे व्यक्ति में भी कोई न कोई गुण दिखाई देगा.... निरन्तर जब व्यक्ति का ऐसा चिन्तन बनता है तो उसे अपने दुर्गुण दिखाई देते हैं.... इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाने से अनेकों ही झगड़ों तथा ईर्ष्या-द्वेष आदि का समापन किया जा सकता है.... चाहे झगड़े परिवार के हों, पड़ोस के, किसी संस्था के या फिर समाज के हों उनका कारण अधिकतम हमारा एक-पक्षीय दृष्टिकोण ही होता है। स्वाध्याय, सत्संग एवं साधना के द्वारा अपने भीतर पवित्रता और ज्ञान को उद्‌बुद्ध करके अपनी दृष्टि को उत्कृष्टता प्रदान करनी चाहिए।

संसार में केवल वे ही अन्धे नहीं हैं जिनकी आँखें नहीं हैं बल्कि अन्धे वे भी हैं जो बिना भोगे पाप-कर्मों से मुक्ति मानते हैं, जो अपनी बुद्धि, बल तथा कर्म पर नहीं बल्कि भाग्य, टोने-टोटकों, ग्रहों और तथाकथित पाखण्डियों का

आँखें मून्दकर अनुकरण करके ठगे जाते हैं, जो अपने महापुरुषों को सही-सही नहीं मानते (उनका उपहास करते हैं) तथा उनके आदेशानुसार नहीं चलते, जो अपने बच्चों को बिगड़ते हुए देखते हुए भी नहीं देखते, जो देश की स्थिति से आँखें मून्दे बैठे हैं, जो चारों धाम और तीर्थों का सही-सही ज्ञान नहीं रखते हैं, जो देव-पूजा का भाव नहीं समझते हैं, जो संसारिक पदार्थों के भोगों में तृप्ति चाहते हैं, जो दुःखों का कारण नहीं जानते और सुखों के उपाय नहीं करते, जो दूसरों को बूढ़ा होते हुए देखता तो है मगर यह नहीं सोचता कि मैंने भी किसी दिन बूढ़े होना है, जो औरों को मरते हुए देखकर यह सोचते हैं कि मैं नहीं मरूँगा, जो जीवन भर स्वयं से अपरिचित ही रहते हैं, अन्धे वे भी हैं जो परमात्मा नाम की किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं मानते हैं वा ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते। सर्वव्यापक परमात्मा की उपासना छोड़कर पाखण्डी गुरु-घंटालों के चक्कर में पड़े हुए हैं.... इस प्रकार अन्धों की सूची बहुत लम्बी है.... वास्तव में देखने का भाव यहाँ मात्र ऊपर-ऊपर से देखना ही नहीं है बल्कि संसार की प्रत्येक अच्छी व बुरी घटना को देखकर उस पर मनन व चिन्तन करके प्रेरणा लेने की आवश्यकता होती है....

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ - यजु. ६/४

इस मन्त्र में यही भाव व्यक्त किए गए हैं कि समझदार व्यक्ति प्रभु के विलक्षण कार्यों को देखकर मनन और चिन्तन करता है और फिर उन्हें करने का स्वयं भी व्रत लेता है। यही व्यक्ति मेधातिथि अर्थात् समझदारी से चलने वाला है। यह कहता है कि (विष्णोः) उस व्यापक प्रभु के (कर्माणि) कर्मों को (पश्यत) देखो, (यतः) जिन कर्मों को देखने से ही यह द्रष्टा (व्रतानि) अपने जीवन-नियमों को (पस्पशे) अपने में बांधता है अर्थात् अपने जीवन को भी उन्हीं कर्मों में लगाने का ध्यान करता है। यह (युज्यः) प्रभु के कामों का ध्यान करके अपने को उन कर्मों से जोड़नेवाला सदाचारी ही (इन्द्रस्य) उस सर्वशक्तिमान् परम ऐश्वर्यशाली प्रभु का (सखा) मित्र बनता है। पश्येम के सही भाव को ग्रहण करते हुए हम 'सम्यक्-ज्ञान' प्राप्त करें। जैसे मूलशंकर ने बहिन और चाचा की मृत्यु को देखकर ग्रहण किया था, जैसे सिद्धार्थ ने बूढ़े को तथा अर्थी को देखकर प्राप्त किया था। तभी हम मन्त्र 'भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः' के अन्तिम भाग में कहे गए आदेश का अनुपालन कर सकते हैं।.... 'जो जीवन (देवहितम्) देव के उपासन के योग्य है अर्थात् जो अपने कर्त्तव्यों को करने के द्वारा प्रभु की अर्चना में बीतता है.....', हम अपने स्वरूप का चिन्तन करें। अपने स्वरूप में आना ही प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करना है.... प्रभु उपासन है.... यही मोक्ष है.... कैवल्य है....।

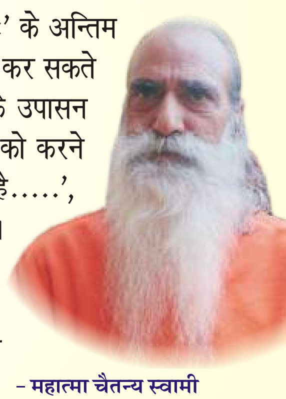

- महात्मा चैतन्य स्वामी
महर्षि दयानन्द धाम, महादेव
सुन्दरनगर- १७५०१८ (हि. प्र.), चलभाष- ९४१८०५३०९२

विश्व भर से सहस्रों की संख्या में आने वाले दर्शकों के नवलखा महल, उदयपुर के बारे में विचार

श्रीमती भगवंती धूरा जी, शतर्षीय वयोवृद्ध श्री मोहन लाल जी मोहित की सुपुत्री और नतनी संगीता सम्पत जी का डॉ. उदय नारायण गंगू जी के साथ वायुयान द्वारा मॉरीशस से उदयपुर आना हुआ। तीन जनवरी को नवलखा पहुँचे। चित्रदीर्घा के दर्शन से महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व व कृतित्व का परिचय प्राप्त हुआ। सत्यार्थ प्रकाश रचना स्थली के दर्शन किए। हम सब महर्षि के त्याग व तप से आत्म विभोर हुए।

श्री अशोक जी आर्य ने तपस्वी आर्य विद्वानों के चित्रों का संग्रह करके अद्भुत कार्य किए हैं। उनके प्रति हमारी श्रद्धा द्विगुणित हो गई। उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए एक नये इतिहास का निर्माण किया है, जिसके लिए वे शत-शत बधाईयों के अधिकारी हैं। यहाँ के कर्मचारी महर्षि के कार्यों से पूर्ण परिचित हैं। श्री चन्द्रकान्त आर्य जी ने बड़ी खूबी से प्रदर्शित चित्रों पर प्रकाश डाला है। बी. एल. गर्ग जी ने भी सहयोग किया। सबको सादर धन्यवाद। - डॉ. उदय नारायण गंगू, पूर्व प्रधान-आर्य सभा मॉरीशस

छत्रपति शिवाजी जयन्ती पर विशेष

छत्रपति शिवाजी महाराज

जैसे आज भारत स्वाधीन तथा एक ही केन्द्रीय सत्ता के अधीन है, इसी प्रकार पूरे राष्ट्र को विदेशी और आतताई राज्य-सत्ता से स्वाधीन करा सारे भारत में एक सार्वभौम स्वतंत्र शासन स्थापित करने का एक प्रयत्न स्वतंत्रता के अनन्य पुजारी वीर प्रवर शिवाजी ने भी किया था। इसी प्रकार उन्हें एक अग्रगण्य वीर एवं अमर स्वतत्रता-सेनानी स्वीकार किया जाता है। यों शिवाजी पर मुस्लिम विरोधी होने का दोषारोपण किया जाता है, पर यह सत्य इसलिए नहीं कि उन की सेना में तो अनेक मुस्लिम नायक एवं सेनानी थे ही, अनेक मुस्लिम सरदार और सूबेदारों जैसे लोग भी थे।

वास्तव में वीर प्रवर शिवाजी का सारा संघर्ष उस कट्टरता और उद्दण्डता के विरुद्ध था, जिसे औरंगजेब जैसे शासकों और उसकी छत्रछाया में पलने वाले लोगों ने अपना रखा था। वीर शिवाजी तो राष्ट्रीयता के जीवन्त प्रतीक एवं परिचायक थे। इसी कारण निकट अतीत के राष्ट्रपुरुषों में महाराणा प्रताप के साथ-साथ इनकी भी गणना की जाती है। शिवाजी शाहजी और माता जीजाबाई की सन्तान थे। माता जीजाबाई धार्मिक स्वभाव वाली होते हुए भी गुण-स्वभाव और व्यवहार में वीरांगना नारी थीं।

इसी कारण उन्होंने बालक शिवा का पालन-पोषण रामायण, महाभारत तथा अन्य भारतीय वीरोत्माओं की उज्ज्वल कहानियाँ सुना और शिक्षा देकर किया था। दादा कोणदेव की संरक्षकता में उन्हें सभी तरह की सामयिक युद्ध आदि विधाओं में भी निष्णात बनाया था। धर्म, संस्कृति और राजनीति की भी उचित शिक्षा दिलवाई थी। उस युग के परम सन्त रामदास के सम्पर्क में आने से शिवाजी पूर्णतया राष्ट्रप्रेमी, कर्त्तव्य परायण एव कर्मठ योद्धा बन गए ।

बचपन में ही शिवाजी अपनी आयु के बालक इकट्ठे कर उनके नेता बन युद्ध करने और किले जीतने का खेल खेला करते थे। युवावस्था में आते ही उनका यह खेल वास्तविक कर्म बनकर शत्रुओं पर आक्रमण कर उनके किले आदि भी जीतने लगे। जैसे ही तोरण और पुरन्दर जैसे किलों पर उनका अधिकार हुआ, वैसे ही उन के नाम और कर्म की दक्षिण में तो धूम मच ही गई, खबरें आगरा और दिल्ली तक भी पहुँचने लगीं ।

अत्याचारी किस्म के यवन एवं उनके सहायक सभी शासक उनका नाम सुनकर ही मारे डर के बगलें झाँकने लगे।

शिवाजी के बढ़ते प्रताप से आतंकित बीजापुर के शासक आदिलशाह जब शिवाजी को पकड़ न पाए, तो उनके पिता शाहजी को ही गिरफ्तार कर लिया। पता चलने पर शिवाजी आग बबूला हो उठे। उन्होंने नीति और साहस से काम ले, छापामारी का सहारा लेकर जल्दी ही पिता जी को मुक्त करा लिया।

तब बीजापुर के शासक ने जीवित अथवा मृत पकड़ लाने का आदेश देकर अपने चुस्त एवं मक्कार सेनापति अफजलखां

को भेजा। उसने सुलह और भाईचारे का नाटक रच कर

शिवाजी को बाहों के घेरे में लेकर मारना चाहा पर नीतिज्ञ और समझदार शिवाजी के हाथ में छिपे बघनखे का शिकार होकर स्वयं मारा गया। उनकी सेनाएँ शिवाजी की सेनाओं के समझे-बूझे आक्रमण का शिकार होकर या तो मारी गईं या दुम दबाकर भाग जान बचाने को विवश हो गईं।

दक्षिण के राज्यों पर अपना दबदबा बैठा लेने के बाद वीर शिवाजी का ध्यान उधर स्थित मुगलों के अधीनस्थ राज्यों किलों की ओर गया। एक-के-बाद-एक किला अधीन होते देख औरंगजेब ने जयपुर के महाराजा जयसिंह को शिवाजी पर आक्रमण करने भेजा। वे शिवाजी को समझा-बुझा कर अपने साथ आगरा ले गए। लेकिन शिवाजी को उनके योग्य स्थान देने के स्थान पर जब दस-बीस हजारियों के साथ बैठाना चाहा, तो इसे अपना अपमान मानकर शिवाजी कटु वचन कह कर दरबार से चले गए ।

औरंगजेब ने आगरा किले में उन्हें नजरबन्द करवा दिया। लेकिन शिवाजी भी कम नीतिवान नहीं थे चुपके से मिठाई के टोकरे में बैठ किले से बाहर आ गए, जहाँ घोड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन पर सवार हो चालाकी से मुगल राज्य की सीमाएँ पार करते हुए सुरक्षित अपने स्थान पर आ पहुँचे। विक्षुब्ध औरंगजेब बाद में तरह-तरह के उपाय करके, प्रलोभन देकर वीर शिवाजी को पकड़ने, आधीन बनाने या मरवा डालने का प्रयास करता रहा। फिर भी शिवाजी के वीरता एवं गौरव ने एक भी वार ठीक नहीं बैठने दिया ।

अपने राज्य में पहुँच शिवाजी ने और भी कई युद्ध किए, विजय पाई और अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। खानदेश, सूरत, अहमदनगर आदि उनके अधीन हो कर उन्हें चौथ देने लगे। आखिर सन् १६७४ ई. में उन्होंने अपने-आपकों सब तरह से स्वतंत्र महाराजा घोषित किया और रायगढ़ में छत्रपति शिवाजी के रूप में अपना राज्याभिषेक विधिपूर्वक करवाया। शिवाजी का चरित्र बड़ा ऊँचा था। वे किसी भी जाति की स्त्री पर अत्याचार सहन न कर पाते थे।

इसी कारण यदि भूल से भी उनके सैनिक यदि किसी मुगल-मुसलमान बेगम को पकड़ लाते, तो उनका सत्कार माँ-बहन की तरह कर उन्हें तो सम्मानपूर्वक उन के घर पहुँचवा ही देते, पकड़ कर लाने वाले मराठा सैनिकों को उचित दण्ड भी दिया करते। उनका राज्य बड़ा शान्त और सर्वधर्म समन्वय के सिद्धान्त पर आधारित था। वे सभी के साथ अमीर-गरीब, निर्बल-सबल के साथ समान न्याय और व्यवहार करते थे। किसी को भी नाहक पीड़ित या दुखी न तो किया करते और न ही देख सकते थे।

सन् १६८० ई. में स्वर्गवास होने तक उनका जीता और बनाया राज्य अक्षुण्ण बना रहा। राज्य-व्यवस्था, भूमि-व्यवस्था आदि सभी व्यवस्थाएँ उन्होंने नए ढंग से की थीं, जो इतिहास में आज भी अमर एवं आदर्श मानी जाती हैं। इन्हीं सब कारणों से वीरवर और छत्रपति शिवाजी को एक आदर्श एवं महान् राष्ट्रपुरुष स्वीकारा जाता है।

सत्यार्थप्रकाश प्रचार सहयोग निधि

• **सत्यार्थ प्रकाश से उत्कृष्ट कोई ग्रन्थ नहीं जिसके प्रकाशन में आपकी पुण्य दान राशि का प्रयोग हो।** सत्यार्थ प्रकाश प्रचार हेतु,कम राशि में अधिक संख्या में यह महान् ग्रन्थ जन-जन के हाथों में पहुँच सके, एतदर्थ निम्न योजना निर्मित की गई है:-

• सत्यार्थप्रकाश के प्रचार हेतु कृपया निम्नानुसार सहयोग कर **लागत मूल्य से आधी कीमत में** सत्यार्थप्रकाश का दिया जाना सुनिश्चित करें। आपके द्वारा सहयोगार्थ प्रदान की गई राशि के समक्ष अंकित प्रतियों पर आपका अथवा आपके किसी प्रियजन का चित्र ग्रन्थ पर दिया जावेगा।

राशि	प्रतियों की संख्या	राशि	प्रतियों की संख्या
१५००००	दस हजार	११२५००	७५००
७५०००	५०००	३७५००	२५००
१५०००	१०००	इससे स्वल्प राशि देने वाले दानवीरों के नाम ग्रन्थ में अंकित किये जायेंगे।	

आपका दान आयकर अधिनियम की धारा ८० जी के अंतर्गत करमुक्त होगा। राशि न्यास के नाम ड्राफ्ट या चैक द्वारा भेजें अथवा यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, उदयपुर खाता क्रमांक ३१०१०२०१००४१५१८ में जमा कर सूचित करें।

निवेदक

भवानीदास आर्य (मंत्री-न्यास) | भंवरलाल गर्ग (कार्यालय मंत्री) | डॉ.अमृत लाल तापड़िया (उपमंत्री-न्यास)

न्यास द्वारा प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश
₹100 के स्थान पर अब ₹45 में उपलब्ध
सौ प्रतियाँ लेने पर ₹4000
(डाक खर्च अतिरिक्त)

₹15000 सत्यार्थ प्रकाश प्रचार सहयोग राशि देकर एक हजार प्रतियों पर अपना वा अपने किन्हीं परिचित का विवरण फोटो सहित छपवावें।

वैदिक आदर्श गृहस्थ

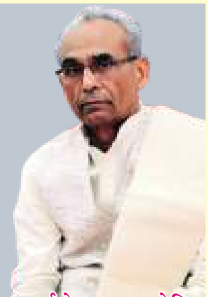

आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय

पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत, विद्या, बल को प्राप्त तथा तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव से प्रीतियुक्त होके अपने-अपने वर्णाश्रम के अनुकूल ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिए स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध हुए पश्चात् यथाशक्ति परोपकार नियतं जैसे योगी लोग जिस योग की रीति से उपासना करते हैं वैसे ईश्वरोपासना करना तथा गृहकृत्य करना, सत्यधर्म में ही अपना तन, मन, धन लगाना और धर्मानुसार सन्तानों को उत्पन्न करना आदर्श गृहस्थाश्रम कहलाता है।

वैदिक वाङ्मयानुसार गृहस्थ पति-पत्नी की एक ऐसी तन्मयता या सम्मेलन है जिसमें दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। यह तन्मयता जितनी सर्वांगीण होगी उतनी ही गृहस्थाश्रम की आदर्श स्थिति ऊँची होगी। इस स्थिति में किसी तीसरे व्यक्ति के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं है।

पति-पत्नी के इस एकीभाव को कितने ही प्रकार से वैदिक वाङ्मय में संकेतित किया गया है। पति-पत्नी जिस 'पुरोडाश' को यज्ञ में डालते हैं वह एक 'कपाल' में संस्कृत होता है। यज्ञ की परिभाषाओं में 'कपाल' का बड़ा महत्व है। पति-पत्नी के एक कपाल-संस्कृत-पुरोडाश में एकत्वभाव की चरम व्यंजना है। यदि गृहस्थ जीवन के सब कर्मों को यज्ञ कहा जाय तो गृहस्थ के सब प्रयत्न उसमें पुरोडाश हैं क्योंकि पति-पत्नी दोनों का इसमें समांश भाग है।

एकत्व के इस निदर्शन में द्यावा-पृथिवी, उत्तरारणि-अधरारणि आदि हैं। यज्ञ में दोनों अरणियों के संयोग से ही यज्ञाग्नि निर्मथित होती है। पति उत्तरारणि है और पत्नी अधरारणि है। विवाह यज्ञ में पति के साथ यज्ञसंयोग को प्राप्त होने से स्त्री की पत्नी संज्ञा है। पति-पत्नी रूप अरणियों के परस्पर निर्मन्थन से सन्तान रूपी अग्नि उत्पन्न होती है।

छान्दोग्योपनिषद् के शब्दों के भावों के अनुसार विधाता की ब्रह्माण्ड व्यापी प्रयोगशाला में पुरुष धन विद्युत् और योषा रूप ऋण विद्युत् के सम्मिलन से जो अग्नि स्फुलिंग प्रदीप्त होती है वही सन्तान है जिससे सृष्टि यज्ञ विस्तृत होता है। शतपथ में इसी भाव को और भी सुन्दरता से चित्रित किया है-

योषा वै वेदिर्वृषा अग्निः। - शत.१/२/५/१५

जैसे विधिपूर्वक चयन को प्राप्त हुई वेदि सुसमिद्ध अग्नि से मिलकर फलवती होती है। वैसे ही विवाह यज्ञ द्वारा वृषाशक्ति सम्पन्न पुरुष के साथ तन्मयता को प्राप्त हुई योषित ही सम्यक् प्रजावती होती है? इसीलिए आरण्यक ग्रन्थों में प्रजनन धर्म लक्षणों में निहित है।

अथर्व. काण्ड १४। सूक्त १ का ९वाँ मंत्र गार्हस्थ्य धर्म को कितने वैज्ञानिक रूप से चित्रित करता है। मंत्र इस प्रकार है-

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादादात्।।

इस ब्रह्माण्ड में सोम चन्द्रमा है जो शुभगुणयुक्त है। सूर्य की किरणवत् सौन्दर्य गुणयुक्त सूर्या है। यह सोम=चन्द्रमा सूर्य की सूर्या रूप वधू की कामना वाला हुआ तथा सूर्या भी सोम की कामना वाली हुई अर्थात् दोनों श्रेष्ठ तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले एक दूसरे को चाहने वाले हुए। अभिप्राय यह हुआ कि सोम-पति है और इस शुभगुणयुक्त सुकुमार पति के लिए अपने मन से गुणकीर्तन करने वाली सुनहरी कान्तियुक्त सूर्या वधू है। सविता=सूर्य जो सूर्या का पिता है, वह इस सूर्या को सोम=पुरुष को देता है। यह सर्वविदित है कि सूर्य किरण से सोम चन्द्रमा शोभनगुणयुक्त होकर इस जगती तल पर शान्ति सुधा सरसाता है।

इसी प्रकार सोम=स्नातक पूर्ण ब्रह्मचर्य विद्याबल से युक्त पुरुष किरण की तरह=सूर्या की तरह गुण-कर्म-स्वभाव वाली किसी वधू की कामना वाला हुआ। वधू भी कामना वाली भी हुई। तब सविता=आचार्य तथा पिता परमात्मा मन से गुण कीर्तन=शंसन करने वाली वधू को तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुष के लिए दे देता है अर्थात् एकात्मता से विवाह करा देता है। जिस प्रकार सूर्य की कान्ति=किरण सोम=चन्द्रमा में समा जाती है उसी प्रकार पत्नी भी अपने पति में समा जाती है। दोनों एक हो जाते हैं। तभी कान्ति से युक्त चमत्कृत चारु चन्द्र कुमुदजनों के मनकुमुदों को मुद से मुदित बनाता हुआ इस जगती में शान्ति सुधा सरसाता है। मैं समझता हूँ कि बड़े भाग्य से ऐसा जोड़ा मिलता है।

इस प्रकार पत्नी विवाह के द्वारा पति से संयुक्त होकर

तन्मयता की स्थिति अपने सामने रखती है इसी सम्पर्क और संस्पर्श में दिव्य सुख का अनुभव करती है। परन्तु शारीरिक संयोग विवाहोदित सम्मिलन का केवल परिमित अंश है।

पति-पत्नी प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोश के साथ अभिन्न हो जाते हैं। इसी एकात्मता का नाम प्रेम है, उसकी जड़ विज्ञानमय कोश तक पहुँच जाती है तो पत्नी अपने आपको सर्वांश में पति की सत्ता में विलीन करके अपनी पृथक् सत्ता के आभास को खो देती है। यही आनन्द है। प्रेम भरपूर हो तब यदि पत्नी को अपनी पृथक् सत्ता का अनुभव करने को बाध्य किया जाय तो उसको मर्मस्पर्शी जो दुःख होता है वह अचिन्त्य, अकथनीय और वर्णनातीत है क्योंकि इस तन्मयता में पत्नी अपनी पृथक् सम्पत्ति, विचार सबकी तिलाञ्जलि दे देती है?

पत्नी की कान्तिमयता के कमनीय स्वरूप को अरुणिमा विभावरी, सूनरी सबसे पुरानी तथा सदायुवती उषा के काल से भी पूर्व जागने वाली कहकर वेदमंत्र ने सबके सौभाग्य की ओर इशारा किया है। देखिए-

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि।।

- अथर्व. का. १४/सू. २/मं. ३१

सुबुधा बुध्यमाना='सुन्दर ज्ञानी उत्तम शिक्षा को प्राप्त, इन्द्राणीव=इन्द्र अर्थात् सूर्य की कान्ति के समान तू उषसः=उषा काल से अग्रा=पहिली ज्योतिः=ज्योति के तुल्य प्रति जागराति=प्रत्यक्ष सब काम में जागती रहे। और भी-

सूर्ये नारी विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह।

अर्थात् सूर्य की कान्तिसमान पति के साथ प्रजा को प्राप्त करने हारी हो? इसके अतिरिक्त-

जैसे सूर्य सुन्दर प्रकाशयुक्त प्रभात वेला को प्राप्त होता है। वैसे सुख से घर के मध्य में सन्तानोत्पत्ति की क्रिया को जानने हारे सदा हास्य और आनन्दयुक्त प्रसन्न हुए, उत्तम चाल चलन से धर्मयुक्त व्यवहार में चलन हारे उत्तम पुत्र वाले श्रेष्ठ गृहादि सामग्रीयुक्त उत्तम जीवन को धारण करते हुए गृहाश्रम के व्यवहारों के पार हो जाओ।

तुम जाया और पति चकवा और चकवी के समान एक दूसरे से प्रेमबद्ध रहो। इत्यादि वैदिक उपदेश यह सिद्धान्त स्थिर करता है कि प्रेम की यह प्रगाढ़ भावना वा घनिष्ठता यौवनोद्रेक के चपल क्षणों तक ही परिमित न रहकर धर्म के अलङ्घ्य बन्धनों और व्रतों से दृढ़ीभूत होकर आयुपर्यन्त=१०० वर्ष पर्यन्त गृहस्थ सत्र की प्रफुल्ल शान्ति को बढ़ाने वाली हो। यौवन-कुसुम जरा के फलपरिपाकों तक पहुँचे बिना बीच में ही न कुम्हलाने पावे इस बात की चिन्ता में भारत के जरठ मनीषियों ने गृहस्थ नौका को तरुण प्रेम के अनिश्चित थपेड़ों पर निर्भर छोड़ना उचित नहीं समझा। एक बार का उत्पन्न प्रेम कभी मरने के लिए नहीं होता, क्योंकि उसका सूत्रपात करने वाले विवाह-यज्ञ में अग्नि को साक्षी देकर हमने जिस सत्यसंधिता के साथ दाम्पत्य-ग्रन्थि को बांधा था वह सत्य स्वयं भगवान् के रूप में अजर अमर है।

कुल मिलाकर साहित्य का सार यदि निकाला जाए तो जरा से आक्रान्त होने पर भी मनुष्य की मानसिक सत्य संचिता में कोई विकार नहीं आता है तो काल में क्या सामर्थ्य है कि वह प्रेम के दीप को बुझा सके? मृत्यु का पराभव शरीर पर है। प्रेम तो मन का वस्तु है इसलिए उसकी विजय वैजयन्ती अपनी उषःकालीन भासित कान्ति के साथ शाश्वत फहराती है इसलिए इस विवाह के सम्बन्ध-विच्छेद की गुंजाइश नहीं है। भोग की समिधाओं को संयम के जल से प्रोक्षित करना आवश्यक है।

२४३, अरावली अपार्टमेन्ट, अलखनन्दा, दिल्ली-१९
चलभाष- ९८६८५३६७६२

संरक्षक मण्डल - सत्यार्थ सौरभ (₹११,०००)

स्वामी (डॉ.) ओमानन्द सरस्वती, श्रीमान् आनन्द कुमार आर्य, श्री भवानी दास आर्य, श्री सुरेश चन्द्र अग्रवाल, श्री रतिराम शर्मा, श्री दीनदयाल गुप्त, श्री बी.एल. अग्रवाल, श्री कै. देवरत्न आर्य, श्री चन्दूलाल अग्रवाल, श्री मिठाईलाल सिंह, श्री नारायण लाल मित्तल, श्री सुधाकर पीयूष, श्रीमती शारदा गुप्ता, आर्य परिवार संस्था कोटा, श्रीमती आभा आर्या, गुप्त दान दिल्ली, आर्यसमाज गाँधीधाम, गुप्तदान उदयपुर, श्री राजकुमार गुप्ता एवं सरला गुप्ता, श्री मोती लाल आर्य, श्री लक्ष्मण सराफ, श्रीमती पुष्पा गुप्ता, श्री जयदेव आर्य, श्री श्रवण कुमार गुप्ता, श्रीमती सरोज वर्मा, श्री विवेक बंसल, श्री दीपचंद आर्य, श्री एम.पी. सिंह, प्रो. आर.के.एरन, श्री खुशहालचन्द आर्य, श्री विजय तायलिया, श्री वीरेन्द्र मित्तल, स्वामी (डॉ.) आर्येशानन्द सरस्वती, स्वामी प्रवासानन्द सरस्वती, स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती, श्री राव हरिश्चन्द्र आर्य, श्री भारतभूषण गुप्ता, श्री कृष्ण चौपड़ा, श्री रामप्रकाश छाबड़ा, श्री विकास गुप्ता, श्री एम. विजेन्द्र कुमार टाक, श्री नरेश कुमार राणा, डॉ.मोतीलाल शर्मा, डी.ए.वी. एकेडमी, टाण्डा, श्री प्रधान जी, मध्यभारतीय आ. प्र. सभा, श्री रघुनाथ मित्तल, मिश्रीलाल आर्य कन्या इण्टर कॉलेज, टाण्डा, श्री प्रह्लादकृष्ण एवं श्रीमती प्रभा भार्गव श्री लोकेश चन्द्र टांक, श्रीमती गायत्री पंवार, डॉ. वेद प्रकाश गुप्ता, श्री वीरमुखी, डॉ. अमृतलाल तापड़िया, आर्य समाज हिरणमगरी, उदयपुर, श्री सुरेशपाल, यू.एस.ए., श्री राजेन्द्र कुमार सक्सेना, कोटा, श्रीमती सुमन सूद, कन्डा घाट (सोलन), माता शीला सेठी, न्यूजर्सी, डॉ. एस. के. माहेश्वरी, उदयपुर, श्री राजेश तिवारी (शिक्षक), ग्वालियर, श्रीमती सविता सेठी, चण्डीगढ़, डॉ. पूर्णसिंह डबास, नई दिल्ली, श्री बृज वधवा, अम्बाला शहर, श्री हजारी लाल आर्य, उदयपुर, डॉ. सत्यप्रकाश, हरदोई, राजेन्द्रपाल वर्मा, वडोदरा, प्रिन्सीपल डी. ए. वी. एच. जेड. एल. सी. सै. स्कूल, दरीबा (राजसमन्द), आचार्य आनन्द पुरुषार्थी, होशंगाबाद, श्री ओ३म् प्रकाश अग्रवाल, नोएडा, श्री भरत ओ३म् प्रकाश अग्रवाल, अहमदाबाद, श्री सुरेन्द्र कर्मचन्दानी, पुणे, डॉ. आनन्द कुमार शर्मा, नई दिल्ली, श्री रमेश चन्द्र गुप्ता, यू.एस.ए., श्री शुद्धबोध शर्मा; श्रीगंगानगर, श्री कन्हैया लाल आर्य, शाहपुरा, श्री अशोक कुमार वार्ष्णेय; बडोदरा, डॉ. सत्या पी. वार्ष्णेय; कनाडा, नागेन्द्र प्रसाद गुप्ता, बगहा (बिहार), श्री गणेशदत्त गोयल, बुलन्दशहर (उ. प्र.), श्री पूर्णचन्द आर्य, कानोड़, श्री वेदप्रकाश आर्य; नई दिल्ली, श्री सत्यनारायण शर्मा; उदयपुर

अपने ऋण चुकाएँ

मनुष्य जब से संसार में जन्म लेता है तभी से उस पर ऋणों की परम्परा शुरू हो जाती है। माता जिस बालक को नौ महीने तक अपने गर्भ में धारण करके उसके तन-मन तथा आत्मा के समुचित विकास के लिए क्षण-क्षण, तिल-तिल कर अपना सर्वस्व निछावर करती है तथा जन्म के बाद माता और पिता जिस आत्मीयता, परोपकार भावना तथा निष्ठा से उसका लालन-पालन, पोषण-रक्षण करते हैं वह बालक के अस्तित्व के लिए परम महत्वपूर्ण तथा बेमिसाल होता है। बालक को जन्म देने, शिक्षा संस्कार देने तथा पालन-पोषण करने में, माता-पिता जितना कष्ट उठाते हैं उसका बदला तो सौ वर्षों में भी नहीं चुकाया जा सकता। इसीलिए **'मातृमान, पितृमान्, आचार्यवान पुरुषो वेद'।** - शत. ब्रा. का.१४/प्रपा.५/ब्रा.८/कं.२ के उद्घोष में माता-पिता को सर्वप्रथम स्थान दिया है। यहीं संतान को उपदेश करते हुए नीतिकारों ने सबसे पहला उपदेश यही दिया है- **'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव।'** अर्थात् हे मनुष्य! तुम्हारे सबसे पहले पूजने योग्य देवता समान तुम्हारे माता-पिता ही हैं। इनका आदर, सत्कार करने से ही सारे देवता प्रसन्न हो जाते हैं, अतः तुम्हें इनकी आज्ञा का पालन करना तथा सेवा-शुश्रूषा करके अपने प्रथम ऋण जिसे पितृ-ऋण कहा गया है, उससे उऋण होने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रत्येक माता-पिता अपनी सन्तान के सुख तथा उन्नति के लिए अपना तन-मन-धन सभी कुछ निछावर कर देते हैं। संतान के लिए माता-पिता से बढ़कर कोई हितैषी नहीं होता। जिस संतान के बड़ा होने पर उससे सुख तथा सेवा की आशा करते हैं, वही संतान माता-पिता के वृद्ध तथा असहाय होने पर आँखें फेर लेती हैं और विवश होकर असहाय माता पिता को घर छोड़कर मंदिरों, तीर्थों या वृद्ध-आश्रमों का सहारा लेना पड़ता है। स्वार्थी तथा कृतघ्न बेटे-बेटियाँ केवल अपने बच्चों और पति-पत्नी को ही सब कुछ मानकर वृद्धों को भार तथा अनावश्यक समझने लगते हैं, ऐसे पुत्र-पुत्रियाँ जीवन में कभी सुखी नहीं हो सकते। वही पुत्र कहलाने का अधिकारी है जो कष्ट के समय माता-पिता की सेवा तथा रक्षा करता है। कलियुगी पुत्र जो माता-पिता की सुख-सुविधा का ध्यान नहीं रखते, उन्हें स्वयं भी सदा दुःख भोगने पड़ते हैं, क्योंकि वे माता-पिता के महान् आशीर्वाद से वंचित रहते हैं। वे अज्ञानी इस बात को नहीं जानते कि माता-पिता के आशीर्वाद के बिना आयु, विद्या, धन, यश तथा बल कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। कुछ पाखण्डी तथा भ्रमित लोग जो जीवनभर अपने माता-पिता से दुर्व्यवहार करते रहे, उनको दुःख पहुँचाते रहे, पर उनकी मृत्यु हो जाने पर उन्हें गंगा ले जाते हैं, ब्रह्म भोज, श्राद्ध तर्पण तथा दान आदि करते हैं, वह सर्वथा निष्फल होते हैं क्योंकि सच्चा श्राद्ध तथा तर्पण तो जीवित माता-पिता की सेवा करना ही है। उनकी हालत तो ऐसी होती है- 'जीवित पिता से दंगमदंगा और मरने पर पहुँचाए गंगा।' इसी प्रकार कुछ विमूढ़ व्यक्ति जन्म देने वाली अपनी माँ का तो सदा तिरस्कार करते हैं और शेरांवाली, पहाड़ों वाली माँ के भक्त बनते-फिरते हैं। यह भी खेद तथा उपहास का विषय है कि अपने घर की सबसे बड़ी देवी जिसके शरीर के रक्त व माँस से तुम्हारा शरीर बना है, जिसने दुनियाँ के सारे दुःख उठाकर सदा तुम्हें सुख देने के लिए जीवन भर तपस्या की है, तुम उसकी सदा उपेक्षा करते हो और जय माता की, जय माता की बोलते हुए एक बेजान पत्थर की माँ के लिए जंगल छानते फिरते हो। तुम्हें यदि किसी देवी-देवता की पूजा करनी है उससे कोई वरदान लेना

है, तो वह सब कुछ देने वाले देवी-देवता तुम्हारे माता-पिता ही हैं और उनकी सेवा करके ही तुम संसार के सभी सुख पा सकते हो। इसलिए हे नादान मानव! पितृ-ऋण के महत्व को पहचानो और इसे उतारने के लिए सदा माता-पिता की सच्ची सेवा में लीन रहो। यही तुम्हारे जीवन का प्रथम उद्देश्य होना चाहिए।

विद्या या शिक्षा से ही मानव मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता है। विद्याहीन मनुष्य को तो पशु तुल्य माना गया है। हमारा परम सौभाग्य है कि यह ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल जिससे सीखकर हम जीवन को सार्थक बनाते हैं वह अनन्त काल से चला आ रहा है। हमारे ज्ञानी-ध्यानी, मनीषी-ऋषि मुनियों ने यह सारा ज्ञान चिरकाल से हमारे लिए विरासत के रूप में सुरक्षित रख छोड़ा है। ज्ञान की अजस्र धारा हमारे जन्म लेने के पहले से ही परम्परा रूप में चली आ रही है। पढ़ने-लिखने की रीति, आचार-विचार के संस्कार, पुस्तकों ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन, ध्यान, प्राणायाम की शिक्षा दीक्षा आदि जीवनोपयोगी सारा ज्ञान जिसे हम गुरु शिष्य परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त कर रहे हैं। यह हमारे महान् ऋषियों, आचार्यों की अनुपम देन है। हम पर उनके महान् उपकार हैं, जिन्होंने हमारे लिए ध्वनि, शब्द और भाषा की खोज की जिन्होंने आकाश से पाताल तक दृष्टिगोचर समस्त ब्रह्माण्ड की खोज की तथा अध्ययन किया और हमारे लिए ज्ञान-विज्ञान के असंख्य क्षेत्रों को प्रदान किया। इसे ऋषि ऋण के रूप में जाना जाता है। प्राचीन काल से ही हमारे पूर्वज मनीषियों ने सारा ज्ञान हमारे लिए परोस कर रख छोड़ा है। इस संसार में आते ही सीखने लगे, बोलना, चलना, पढ़ना-लिखना, पूजा-अर्चना, व्यवहार और व्यापार करना। यह महान् सम्पदा हमें अनायास ही मिल जाती है और यही हमारे जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। अपने इन महान् ऋषियों के ऋण को चुकाने के लिए हमें स्वाध्याय और प्रवचन अर्थात् पढ़ना और पढ़ाना होगा, स्वयं ज्ञान का दीपक बनकर ज्ञान का प्रकाश चारों ओर फैलाना होगा और अशिक्षा के अंधकार को मिटाना होगा। हमारे देश की सबसे बड़ी आवश्यकता है, सबके लिए शिक्षा का प्रबन्ध करना। 'सर्वशिक्षा-अभियान' केवल सरकारी घोषणा बनकर नहीं रहनी चाहिए। इसको साकार करने के लिए हमें अपने आसपास रहने वाले किसी को भी अशिक्षित नहीं रहने देना, यह संकल्प लेकर निष्ठापूर्वक अमल करना चाहिए, तभी हम ऋषि ऋण रूपी दूसरे ऋण से मुक्ति पा सकते हैं।

तीसरा और प्रमुख ऋण जो हमारे अस्तित्व के लिए,

जीवनधारा बदलने के लिए परम आवश्यक है वह है देव ऋण। देवों की कृपा के बिना तो हमारे जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनके बिना तो हमारा जीना ही संभव नहीं हो सकता। देव वे हैं जो बिना किसी स्वार्थ के सदा अपनी शक्तियाँ, संपत्तियाँ किसी बदले की भावना के बिना, किसी धर्म जाति, छोटे या बड़े की भावना से रहित होकर हमें मुक्तहस्त से देते रहते हैं। सूर्य देव हमें प्रकाश, ताप तथा ऊर्जा देते हैं, वायु देवता तो हमें साँस लेने के लिए जो वायु देता है वही तो हमारा प्राण है, वही तो जीवन का आधार है। अग्नि देव ने हमें गर्माहट दी है, तो जल देवता ने हमारी सदा प्यास बुझाई है, पृथ्वी ने तो हमें धारण ही किया हुआ है और आकाश ने हमें ऊँचा उठना सिखाया है। कितने महान् और उपकारी हैं यह सब देव। पर यह मानव कितना स्वार्थी, लालची तथा कृतघ्न है। जो देवता इस मनुष्य को अपनी दानशीलता से उपकृत कर रहे हैं, यह दुर्बुद्धि मानव उन्हीं का दुरुपयोग तथा उन्हें प्रदूषित करके अपने लिए, पूरे विश्व के लिए और पूरे ब्रह्माण्ड के लिए खतरे उत्पन्न कर रहा है।

भारतीय संस्कृति तथा वैदिक परम्परा के अनुसार बालक के ज्ञानवान होने पर, उसे विद्यालय भेजने से पहले उसका उपनयन संस्कार कराया जाता था और उसके माध्यम से बचपन से ही उसे इन तीन ऋणों- पितृ ऋण, ऋषि ऋण तथा देव ऋण का बोध कराया जाता था। इन तीनों का अर्थ तथा महत्व बतलाकर बालक से संकल्प कराया जाता था कि वह इनका आभारी होते हुए इनसे उऋण होने का प्रयास करेगा। यज्ञोपवीत (जनेऊ) के तीन धागे इन ऋणों के ही प्रतीक हैं। आजकल के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में इन ऋणों का कोई ज्ञान ध्यान दिखाई नहीं देता। क्योंकि इन तीनों मुख्य तत्वों की घोर उपेक्षा हो रही है। इसीलिए हमारा जीवन निरन्तर दुःखों, कष्टों, तनावों तथा परेशानियों का घर बन गया है।

इन तीन प्रकार के महत्वपूर्ण ऋणों के साथ-साथ एक चौथा

ऋण और ध्यान देने योग्य है वह है हमारी मातृभूमि भारत माता का ऋण। जिस देश की मिट्टी से हम बने हैं, जहाँ का अन्न-जल खाकर बड़े हुए हैं, जो जीवन सुलभ सब संपदाओं को देने वाली है, उस हमारी जन्मभूमि के भी हम पर असंख्य उपकार हैं। हमारा यह तन-मन-धन सब हमारी जन्मभूमि की देन है इसलिए 'राष्ट्र देवो भव' की भावना को भी प्रमुखता देनी होगी। अपने देश की रक्षा तथा उन्नति के लिए आवश्यक कर्तव्यों का पालन करके ही हम राष्ट्र ऋण को चुका सकते हैं। राष्ट्र हमें सब कुछ देता है हम भी तो कुछ देना सीखें।

कर्ज का एक सामान्य नियम है कि यदि उसका कुछ भी भाग न चुकाया जाए तो वह मूलधन से जुड़कर दुगुना या कई गुणा हो जाता है। सामाजिक लेन-देन के नियम से तो कर्ज न लौटाने वाले को न्यायालय के आदेश पर सजा मिल सकती है। उसकी सम्पत्ति की कुड़की हो सकती है। नियम यह है कि आधार या कर्ज वापिस करना ही पड़ता है, नहीं तो सजा तो मिलेगी ही, साथ ही इज्जत भी जाएगी। जीवन दुःख तनाव व संकट ग्रस्त हो जाएगा। ठीक यही नियम सृष्टि पर भी लागू होता है। अतः सृष्टि की समरसता और जीवन को सुखी बनाए रखने के लिए हमें इन ऋणों को चुकाना ही होगा।

सरकार जब बिजली, पानी, टेलीफोन का बिल देती है तो बिल न भरने पर सुविधाएँ काट दी जाती हैं। सरकार का बिल चुका कर हम श्रेष्ठ नागरिक होने का प्रमाण देकर चैन की नींद सो सकते हैं। इसी तरह पितृ ऋण, ऋषि ऋण, देव ऋण तथा राष्ट्र ऋण चुकाकर ही हम सुख, समृद्धि तथा शान्ति पा सकते हैं। पितृ-ऋण चुकाने के लिए हमें आज्ञाकारी संतान बनकर माता-पिता की श्रद्धा तथा निष्ठा से सेवा करनी होगी। ऋषि-ऋण चुकाने के लिए हमें श्रेष्ठ विद्या का अध्ययन, प्रचार तथा अनुसंधान करना होगा।

देव-ऋण चुकाने के लिए हमें प्राकृतिक संतुलन को बिगड़ने से बचाना होगा। हम जिस पृथ्वी पर रहकर सुख पाना चाहते हैं, उसे हरदम खोदते, तोड़ते और गंदा करते रहते हैं। हम वायु से स्वच्छता और प्राण वायु का संचार तो चाहते हैं, पर हम ही उसे धूल, धुँए और जहरीली गैसों से प्रदूषित कर रहे हैं। हम सूर्य और चन्द्रमा से प्रकाश, शीतलता और माधुर्य लेना चाहते हैं, पर उन्हें सबल बनाने के लिए यज्ञ आदि सुगन्धित होम नहीं करते। बादल नियमित रूप से हमें जल देते रहते हैं ताकि प्रत्येक प्राणी अपनी प्यास बुझा सके। गंगा आदि नदियों के पवित्र जल के कारण हमनें उन्हें माता कहकर पूजा तो की, पर क्या हमने कभी उन्हें पवित्र रखने का प्रयास किया? स्वार्थी और ढ़ोंगी भक्त मुँह से वन्दना करते हुए भी उसी गंगा में थूकते रहते हैं। दातुन मंजन करते हैं। गंदे कपड़े धोते हैं। कूड़ा-कचरा, हड्डियाँ और राख बहाते हैं और शहर के सारे गंदे नाले उसी में डालते हैं। क्या गंगा मैया की यही पूजा है?

जीवित रहने के लिए मानव मात्र को प्राण वायु चाहिए, जिसका प्रमुख स्रोत है वृक्ष देवता, जो निरन्तर ऑक्सीजन छोड़ते रहते हैं। पर स्वार्थी मानव ने इन्हें भी काट डाला। शायद यह नहीं जानता कि वह अपनी जीवन डोर को ही काट रहा है। ऐसा करके हम देव ऋण से कैसे मुक्त हो सकते हैं? जो कर्ज हम अपना फर्ज मानकर नहीं लौटायेंगे तो उसका दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा और सचमुच हम यह दण्ड भोग ही तो रहे हैं जो कि हम असाध्य रोगों के शिकार होते जा रहे हैं। संक्षेप में यदि हम व्यक्तिगत या सामाजिक उन्नति चाहते हैं, यदि सुख समृद्धि और शान्ति की कामना करते हैं, संसार के भौतिक, दैहिक, दैविक-ताप तथा प्रकृति के प्रकोपों से छुटकारा पाना चाहते हैं तो हमें निश्चित रूप से पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण, देव-ऋण तथा राष्ट्र-ऋण चुकाने के लिए जागरूक रहकर अपने उचित कर्तव्यों का पालन करना ही होगा।

– ओमप्रकाश शर्मा, पूर्व प्रधानाचार्य, दिल्ली

साभार- जीवन के आधार

वैलेंटाइन डे बनाम विदेशी बाजारवाद

बाजारवाद के इस दौर में प्रेम भी तोहफों का मोहताज हो गया। वैलेंटाइन डे, एक ऐसा दिन जिसके बारे में कुछ सालों पहले तक हमारे देश में बहुत ही कम लोग जानते थे, आज उस दिन का इंतजार करने वाला एक अच्छा खासा वर्ग उपलब्ध है। अगर आप सोच रहे हैं कि केवल इसे चाहने वाला युवा वर्ग ही इस दिन का इंतजार विशेष रूप से करता है तो आप गलत हैं। क्योंकि इसका विरोध करने वाले संगठन भी इस दिन का इंतजार उतनी ही बेसब्री से करते हैं। इसके अलावा आज के भौतिकवादी युग में जब हर मौके और हर भावना का बाजारीकरण हो गया हो, ऐसे दौर में गिफ्ट्स टेडी बियर चाकलेट और फूलों का बाजार भी इस दिन का इंतजार उतनी ही व्याकुलता से करता है।

आज प्रेम आपके दिल और उसकी भावनाओं तक सीमित रहने वाला केवल आपका एक निजी मामला नहीं रह गया है। उपभोक्तावाद और बाजारवाद के इस दौर में प्रेम और उसकी अभिव्यक्ति दोनों ही बाजारवाद का शिकार हो गए हैं। आज प्रेम छुप कर करने वाली चीज नहीं है, फेसबुक, इंस्टाग्राम पर शेयर करने वाली चीज है। आज प्यार वो नहीं है जो निस्वार्थ होता है और बदले में कुछ नहीं चाहता बल्कि आज प्यार वो है जो त्याग नहीं अधिकार माँगता है।

क्योंकि आज मल्टीनेशनल कंपनियाँ बड़ी चालाकी से हमें यह समझाने में सफल हो गई हैं कि प्रेम को तो महँगे उपहार देकर जताया जाता है। वे हमें करोड़ों के विज्ञापनों से यह बात समझा कर अरबों कमाने में कामयाब हो गई हैं कि 'इफ यू लव समवन शो इट', यानी, अगर आप किसी से प्रेम करते हैं तो 'जताइए' और वैलेंटाइन डे इसके लिए सबसे अच्छा दिन है।

यह वाकई में खेद का विषय है कि देश में जहाँ प्रेम की परिभाषा एक अलौकिक एहसास के साथ शुरू होकर समर्पण और भक्ति पर खत्म होती थी आज उस देश में प्रेम की अभिव्यक्ति तोहफों और बाजारवाद की मोहताज हो कर रह गई है।

उससे भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि एक समाज के रूप में पश्चिमी अंधानुकरण के चलते हम विषय की गहराई में उतर कर चीजों को समझकर भारतीय परिप्रेक्ष्य में उसकी उपयोगिता नहीं देखते। सामाजिक परिपक्वता दिखाने के बजाए कथित आधुनिकता के नाम पर बाजारवाद का शिकार हो कर अपनी मानसिक गुलामी ही प्रदर्शित करते हैं। इस बात को समझने के लिए हमें पहले यह समझना होगा कि वैलेंटाइन डे आखिर क्यों मनाया जाता है?

ऐसा कहा जाता है कि ईसा पूर्व २७८ में रोमन साम्राज्य में सम्राट मौरस औरेलियस क्लौडीयस गाथियस को अपनी सेना के लिए लोग नहीं मिल रहे थे। उन्हें ऐसे नौजवान या फिर ऐसे युवा ढूँढ़ने में बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ रहा था जो सेना में भर्ती होना चाहें। उन्होंने ऐसा महसूस किया कि अपनी पत्नियों और परिवार के प्रति मोह के चलते लोग सेना में भर्ती नहीं होना चाहते तो उन्होंने अपने शासन में शादियों पर ही पाबन्दी लगा दी। तब संत वैलेंटाइन ने इस अन्याय के खिलाफ आवाज उठाई और वे चोरी छुपे प्रेमी युगलों का विवाह करा देते थे। जब सम्राट क्लौडीयस को इस बात का पता चला तो उन्होंने संत वैलेंटाइन को गिरफ्तार कर उनको मृत्यु दण्ड दे दिया। ऐसा कहा जाता है कि उनकी याद में ही वैलेंटाइन डे मनाया जाता है।

तो अब प्रश्न यह है कि हमारे देश में जहाँ की संस्कृति में विवाह हमारे जीवन का एक अहम् संस्कार है उस देश में ऐसे दिन को त्यौहार के रूप में मनाने का क्या औचित्य है जिसके मूल में विवाह नामक संस्था का ही विरोध हो? क्योंकि भारत में विवाह का कभी भी विरोध नहीं किया गया बल्कि यह तो खुद ही पाँच छः दिनों तक चलने वाला दो परिवारों का सामाजिक उत्सव है।

दरअसल यहाँ यह समझना भी जरूरी है कि मुख्य विषय

वैलेंटाइन डे के विरोध या समर्थन का नहीं है बल्कि किसी दिन या त्यौहार को मनाने के महत्व का है।

किसी भी त्यौहार को मनाने या किसी संस्कृति को अपनाने में कोई बुराई नहीं है लेकिन हमें किसी भी कार्य को करने से पहले इतना तो विचार कर ही लेना चाहिए कि इसका औचित्य क्या है?

कहा जाता है कि वैलेंटाइन डे प्यार जताने का दिन है। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि जरूरी नहीं कि इस दिन आप अपने प्रेमी को ही अपना प्यार जताएँ, आप अपने माता-पिता को, गुरु को किसी के प्रति भी अपना प्यार जता सकते हैं। ऐसे लोगों के लिए एक तथ्य। भारत जैसे सांस्कृतिक रूप से समृद्ध देश को प्यार जताने के लिए विदेश से किसी दिन को आयात करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह तो त्यौहारों का वो देश है जो मानवीय सम्बन्धों ही नहीं बल्कि प्रकृति के साथ भी अपने प्रेम और कृतज्ञता को अनेक त्योहारों के माध्यम से प्रकट करता है। जैसे गुरु पूर्णिमा (गुरु शिष्य), रक्षा बन्धन, भाई दूज (भाई बहन), मकर संक्रान्ति (सौर-विज्ञान), वसंत पंचमी (प्रेमी युगल), गंगा दशहरा, (प्रकृति), हमारे देश में इस प्रकार के अनेक पर्व विभिन्न रिश्तों में प्रेम प्रकट करने के सशक्त माध्यम हैं।

इसके बावजूद अगर आज भारत जैसे देश में वसंतोत्सव की जगह वैलेंटाइन डे ने ले ली है तो कारण तो एक समाज के रूप में हमें ही खोजने होंगे। यह तो हमें ही समझना होगा कि हम केवल वसंतोत्सव से नहीं प्रकृति से भी दूर हो गए। केवल प्रकृति ही नहीं अपनी संस्कृति से भी दूर हो गए। हमने केवल वैलेंटाइन डे नहीं अपनाया बाजारवाद और उपभोक्तावाद भी अपना लिया। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि हम मल्टीनेशनल कम्पनियों के हाथों की कठपुतली बन कर खुद अपनी संस्कृति के विनाशक बन जाते हैं जब हम अपने देश के त्योहारों को छोड़कर प्यार जताने के लिए वैलेंटाइन डे जैसे दिन को मनाते हैं, और वह भी फूहड़ ढंग से।

– डा. नीलम महेन्द्र

(साभार- क्रान्तिदूत)

आर्यरत्न डॉ. ओमप्रकाश (म्यांमार) स्मृति पुरस्कार

''सत्यार्थ-भूषण'' पुरस्कार

₹ 5100

कौन बनेगा विजेता

- न्यास की मासिक पत्रिका सत्यार्थ सौरभ का सदस्य होना आवश्यक है।
- हल की हुयी पहेली अन्तिम तिथि से पूर्व न्यास कार्यालय में पहुँचे यह सुनिश्चित करें।
- अपना सत्यार्थ सौरभ सदस्यता क्रमांक हल की हुयी पहेली के ऊपर अवश्य अंकित करें।
- लिफाफे के ऊपर 'सत्यार्थप्रकाश पहेली क्रमांक' अवश्य अंकित करें।
- आयु, लिंग, योग्यता की कोई बाधा नहीं। आबाल-वृद्ध, नर-नारी, छोटे-बड़े सभी पात्र हैं।
- विश्व भर के लोगों से सत्यार्थ सौरभ मासिक पत्रिका के अन्तर्गत 'सत्यार्थकाश पहेली' में भाग लेने का अनुरोध है।
- वर्ष भर में एक (१) के स्थान पर चार (४) पुरस्कारों के साथ ही नियमों में सकारात्मक परिवर्तन कर ऐसी व्यवस्था की गई है कि वर्ष में एक बार भाग लेने वाले/अथवा एक बार ही सफलता प्राप्त करने वाले भी पुरस्कार से वंचित न हों।
- पहेली का सही हल प्रेषित करने वाले प्रतिभागियों को ४ भागों में विभक्त किया जावेगा।
  - (अ) सम्पूर्ण वर्ष में समस्त १२ पहेलियों का शुद्ध उत्तर प्रेषित करने वाले।
  - (ब) सम्पूर्ण वर्ष में ८ से ११ पहेलियों का शुद्ध उत्तर प्रेषित करने वाले।
  - (स) सम्पूर्ण वर्ष में ५ से ७ पहेलियों का शुद्ध उत्तर प्रेषित करने वाले।
  - (द) सम्पूर्ण वर्ष में १ से ४ पहेलियों का शुद्ध उत्तर प्रेषित करने वाले।
- वर्षान्त में प्रत्येक समूह में से एक विजेता का चयन (लाट्री द्वारा) किया जाकर पुरस्कृत किया जावेगा।
- पुरस्कार राशि क्रमशः ₹५१००, ₹११००, ₹७०० तथा ₹५०० होगी। अन्य सभी नियम पूर्वानुसार।

₹5100 का पुरस्कार प्राप्त करें ''सत्यार्थ सौरभ'' के सदस्य बनें

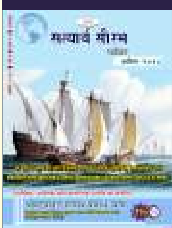

अविलम्ब बहुप्रशंसित पत्रिका 'सत्यार्थ सौरभ' के सदस्य बनें, जो पहले से सदस्य हैं अपना नवीनीकरण करावें और सत्यार्थ सौरभ में छप रही 'सत्यार्थप्रकाश पहेली' में भाग लेने की पात्रता प्राप्त करें और पावें ₹5100 का पुरस्कार।

पूर्ण विवरण इसी पृष्ठ पर देखें।

स्वर्णिम शताब्दी मुबारक हो

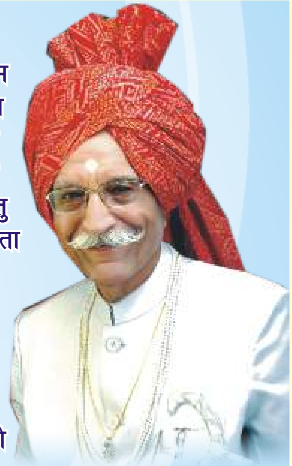

विश्वप्रसिद्ध मसाला निर्माण कंपनी (MDH) ने आज व्यापार जगत् में धर्म के रास्ते से चलते हुए स्वर्णिम 100 वर्ष पूरे कर एक कीर्तिमान स्थापित किया है। स्यालकोट में स्थापित इस कम्पनी को विभाजन का दंश झेलना पड़ा। पर किसे पता था कि महाशय चुन्नीलाल जी के सुपुत्र महाशय धर्मपाल जी भारत मे पुनः इस कम्पनी का न केवल पुनरुद्धार करेंगे वरन् इसे शीर्ष पर पहुँचा देंगे। आज सरकार ने इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि व्यापार जगत् भी सामाजिक उत्थान के लिए आगे आये CSR का नियम बनाया है परन्तु महाशय जी तो कई दशक पूर्व से स्वयमेव ही अंतश्चेतना के आधार पर माता चन्नन देवी जी के नाम पर माता चन्नन देवी अस्पताल का निर्माण कर लोक कल्याण की शुरुआत कर चुके हैं। आज अनेकानेक लोकोपकारी संस्थाएँ महाशय जी की दान सरिता के कारण पुष्पित व पल्लवित हो रहीं हैं। उनके इसी स्वरूप को मान्यता प्रदान करते हुए भारत सरकार ने वर्ष 2019 में पद्मविभूषण पुरस्कार से उन्हें सम्मानित किया है।

आर्यसमाज व इसके प्रकल्पों के उन्नयन में महाशय धर्मपाल जी एक ऐसा सम्बल बन गए हैं जो आगे आने वाले सैंकड़ों वर्षों तक निःसंदेह मूल कारण के रूप में याद किये जायेंगे।

एम. डी. एच. की अभूतपूर्व सफलता में पूज्य महाशय धर्मपाल जी के साथ उनके योग्य सुपुत्र मान्य राजीव जी गुलाटी के अतिरिक्त कम्पनी के अन्य अधिकारियों के परिश्रम व निष्ठा को भी याद करना ही होगा।

पूज्य महाशय जी सद्यः श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते हुए इसके बहुविध विकास के कारण बने हैं। आज जो यहाँ से सहस्रों लोग प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं वह सब पूज्य महाशय जी की कृपा और मार्गदर्शन का ही परिणाम है। आगे एक 3D थिएटर तथा 4D संस्कार वीथिका की अद्वितीय योजना है वह भी आपके ही आशीर्वाद से पूर्ण होगी।

इस स्वर्णिम अवसर पर एम. डी. एच. के सभी अधिकारियों व कर्मचारियों की सेवा भावना की प्रशंसा करते हुए पूज्य महाशय जी को बारम्बार नमन करते हैं। पुनः एक बार एम. डी. एच. परिवार को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

– अशोक आर्य

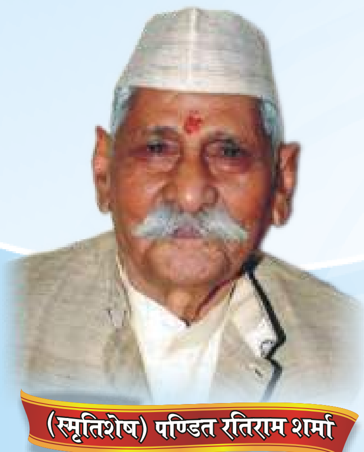

(स्मृतिशेष) पण्डित रतिराम शर्मा

।।ओ३म्।।

वैदिक धर्म के अनन्य उपासक, आर्य समाज के दीवाने और ऋषि दयानन्द के परमभक्त निष्काम कर्मयोगी आर्यरत्न पंडित रतिराम शर्मा ने सोमवार 30 दिसम्बर 2019 को अपनी भीष्म प्रतिज्ञा का अक्षरशः पालन करते हुए, अपने निवास पर परिजनों के हाथों में, इस नश्वर संसार को सर्वदा के लिए त्याग कर अपने 'ओ3म्' पिता का सामीप्य प्राप्त कर लिया।

20 जुलाई 1928 को हरियाणा के देवराला ग्राम में पंडित गौरीदत्त शर्मा के एक मात्र पुत्र के रूप में उन्होंने इस संसार को प्राप्त किया। एक मात्र पुत्र के मोह के वशीभूत माता–पिता ने इनको ग्राम की शिक्षा तक सीमित रखा। उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाए परन्तु बड़े भाई सदृश देवराला ग्राम निवासी श्री गोविन्दराम आर्य जी के सान्निध्य में 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसे अमर ग्रन्थ से परिचित होकर आर्य समाज को समर्पित हो गए। पिता की शिक्षा हमेशा श्रेष्ठजनों की संगत करना– जीवन पर्यन्त इसका पालन करते रहें और अपने ज्ञान को समृद्ध कर आजीवन सत्य विद्या के प्रचार–प्रसार में लगे रहे। न सिर्फ अपनी सन्तानों को उच्च शिक्षित किया बल्कि समाज के अनेक लोगों को विद्या अर्जन में सहायता की। निम्न प्रकल्पों के माध्यम से वे 'संसार का उपकार' करने में निरन्तर सन्नद्ध रहे।

1. ऋषि दयानन्द के वैदिक विचारों का प्रचार : आर्य समाज
2. समाज के सहयोग और विकास की भावना : ऋषि भवन
3. विद्यादान : डी.ए.वी. स्कूल
4. नारी शिक्षा की परिकल्पना : वैदिक विद्या प्रतिष्ठान

श्री रतिराम जी शर्मा ने 92 वर्ष की आयु को प्राप्त किया उसमें लगभग आधी उम्र उपरोक्त संकल्प को पूरा करने में लगे रहे। सिलीगुड़ी नगर में ही नहीं अपितु पूरे उत्तर बंगाल और नेपाल में आर्य समाज और समाज सेवा के क्षेत्र में उनका योगदान अविस्मरणीय है। सिलीगुड़ी में आर्य समाज, ऋषि भवन, डी.ए.वी. स्कूल और वैदिक विद्या प्रतिष्ठान समेत अनेक संस्थाओं के निर्माण के मुख्य शिल्पकार रहे। आज अपने पीछे एक विशाल समृद्ध परिवार संस्कारित करके गए ताकि वे भी उनकी प्रेरणा से उनके दिखाए पथ पर उनका अनुसरण करते रहें। श्री रतिराम जी शर्मा ने वेद पढ़े, वेदों का प्रचार–प्रसार किया और मृत्यु पर्यन्त वेदानुकूल जीवन जी कर उदाहरण बन कर दिखाया।

'जिसकी हो सच्ची लगन, जिसका हो सच्चा प्रण, वो कैसे न उतरे पार।' यह उनके जवीन का ब्रह्म वाक्य था और यही उनकी सफलता का सूत्र था।

'कल्याण मार्ग का पथिक, तनिक लेता ना कभी विराम था।
संकल्पों का धनी, प्रभु का भक्त आर्य रतिराम था।।'

शत–शत नमन

– समस्त न्यासीगण
श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर

३०० असफलताओं से ९०० सफलताओं तक

कथा सरित

हम अक्सर अखबारों में उन लोगों के बारे में पढ़ते हैं जो जीवन की बिभीषिकाओं से घबरा कर आत्महत्या जैसा कदम उठा लेते हैं। अब चाहे वे किसान हों, छात्र हों या व्यापारी अथवा समाज के अन्य घटक हों। कभी कभी तो ऐसे दिल दहला देने वाले समाचार पढ़ने को मिलते हैं जहां पिता पहले अपने पूरे परिवार को खत्म करता है फिर स्वयं को। यह कहानी ऐसे लोगों के लिए ही है।

वस्तुतः इस कहानी के नायक के बारे में कहा जाता है कि वह जीवन में ३०० बार से अधिक असफल हुआ परन्तु उसने साहस और पुरुषार्थ का दामन नहीं छोड़ा। नतीजतन उसी लगनशील व्यक्ति ने अपने साथियों के साथ ९०० से अधिक अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार जीते, जिनमें ४८ एकेडेमी तथा ७ ग्रेमी अवार्ड शामिल हैं। इस शख्स का नाम वाल्ट डिजनी है, जिन्होंने अपने प्रसिद्ध कार्टून चरित्र 'मिक्की माउस' के साथ सफलता की जब शुरूआत की तो पीछे मुड़कर नहीं देखा। पर इससे पूर्व उन्होंने असफलताओं का वह युग देखा जो अच्छों अच्छों को हिला देता है। उनका बचपन बहुत बुरा था उनके पिता के कारण उनके सारे भाई एक एक करके घर से भाग गए। पिता ही के कारण वाल्ट भी अपनी कम उम्र के बारे में झूठ बोलकर प्रथम विश्वयुद्ध के समय एक एम्बूलेंस ड्राइवर बन गए। उसके बाद उन्होंने जब कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया, तो उन्हें अनगिनत व्यापारिक असफलताओं और हिलाकर रख देने वाली घटनाओं ने भी नहीं छोड़ा था।

वाल्ट का जन्म ५ दिसम्बर १९०१ को शिकागो में हुआ। उनका परिवेश एक किसान परिवार का था। परिस्थितियों के कारण केवल सात वर्ष की उम्र में वे चित्र बनाकर पड़ौसियों को बेचने लगे। परिश्रमी वाल्ट रात्रि को फाइन आर्ट्स स्कूल जाते थे। अगस्त १९२३ में वाल्ट कनसास सिटी छोड़कर कुछ चित्रकारी के सामान तथा जेब में मात्र ४० डॉलर लेकर अपने भाग्य को आजमाने हालीवुड चले आये। उनके भाई राय पहले से ही केलीफोर्निया में थे। उन्होंने अपने चाचा के गेरेज में कमरा और छोटा सा स्टूडियो स्थापित किया, पर बात बनी नहीं। इनको सफलता 'मिकी माउस' से मिली। डिजनीलैण्ड के संस्थापक वाल्ट कभी दिवालिया भी हो गए थे यह शायद कई को न पता हो। उन्हें कर्ज लेना पड़ा। वे क्षण भी आये जब वे mental breakdown के शिकार हुए। पर उन्होंने साहस और प्रयत्न को न छोड़ा। उनका कहना था कि असफलताएँ ही आपको सिखाती हैं। Oswald the lucky rabbit उनकी प्रथम बड़ी सफलता थी। उनका 'खरगोश' तो भाग्यशाली था पर शायद वे नहीं। इनके प्रोड्यूसर ने इन्हें धोखा दिया। न फिल्म इनके पास रही न साथी कर्मचारी। यही वे क्षण होते हैं जहाँ आदमी या तो बदले की सोचता है या जीवन त्यागने की। पर वाल्ट ने दोनों रास्तों को नहीं अपनाया। केलीफोर्निया वापस लौटते हुए समस्त हताशा को त्याग उन्होंने ट्रेन में ही मिक्की माउस की संरचना की।

वाल्ट का कथन याद रखने लायक है-

"You may not realize it when it happens, but a kick in the teeth may be the best thing in the world for you."

- चन्द्रकान्त आर्य

स्वास्थ्य

भोजन अच्छे स्वास्थ्य के लिए सबसे जरुरी चीज होती है, लेकिन क्या आपको पता है हर मौसम में एक जैसा खाना आपके स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह हो सकता है।

आयुर्वेद में किस ऋतु में क्या खाएँ तथा किन चीजों से परहेज रखें इसको लेकर काफी विस्तृत जानकारी दी गई है। बसन्त ऋतु में कफ की समस्या अधिक रहती है। अतः इस मौसम में जौ, चना, ज्वार, गेहूँ, चावल, मूँग, अरहर, मसूर की दाल, बैंगन, मूली, बथुआ, परवल, करेला, तोरई, अदरक, सब्जियाँ, केला खीरा, संतरा, शहतूत, हींग, मेथी, जीरा, हल्दी, आँवला आदि कफनाशक पदार्थों का सेवन करें।

बसन्त ऋतु में आयुर्वेद ने खान-पान में संयम की बात कहकर व्यक्ति एवं समाज की नीरोगता का ध्यान रखा है। बसन्त ऋतु दरअसल शीत और ग्रीष्म का संधिकाल होती है। संधि का समय होने से बसन्त ऋतु में थोड़ा-थोड़ा असर दोनों ऋतुओं का होता है। प्रकृति ने यह व्यवस्था इसलिए की है ताकि प्राणीजगत शीतकाल को छोड़ने और ग्रीष्मकाल को अपनाने तक अपने आप को बसन्त ऋतु के माध्यम से समायोजित कर लें। इस ऋतु में मूँग बनाकर खाना भी उत्तम है। नागरमोथ अथवा सोंठ डालकर उबाला हुआ पानी पीने से कफ का नाश होता है। मन को प्रसन्न करें एवं जो हृदय के लिए हितकारी हों ऐसे आसव अरिष्ट जैसे कि मध्वारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, गन्ने का रस, सिरका आदि पीना लाभदायक है।

इस ऋतु में कड़वे नीम में नई कोंपलें फूटती हैं। नीम की १५-२० कोंपलें, २-३ काली मिर्च के साथ चबा-चबाकर खानी चाहिए। १५-२० दिन यह प्रयोग करने से वर्ष भर चर्म रोग, रक्त विकार और ज्वर आदि रोगों से रक्षा करने की प्रतिरोधक शक्ति पैदा होती है एवं आरोग्यता की रक्षा होती है। इसके अलावा कड़वे नीम के फूलों का रस ७ से १५ दिन तक पीने से त्वचा के रोग एवं मलेरिया जैसे ज्वर से भी बचाव होता है।

बसन्त ऋतु में दही का सेवन न करें क्योंकि बसन्त ऋतु में कफ का स्वाभाविक प्रकोप होता है एवं दही कफ को बढ़ाता है। अतः कफ रोग से व्यक्ति ग्रसित हो जाते हैं। शीत एवं बसन्त ऋतु में श्वास, जुकाम, खांसी आदि कफजन्य रोग उत्पन्न होते हैं। उन रोगों में हल्दी का प्रयोग उत्तम होता है। हल्दी शरीर की व्याधि रोधक क्षमता को बढ़ाती है जिससे शरीर रोगों से लड़ने में सक्षम होता है। ५ चौथाई चम्मच हरड़ का चूर्ण शहद में मिलाकर चाटें तो बसन्त ऋतु में होने वाले बलगम, ज्वर, खांसी आदि नष्ट हो जाते हैं। मौसम के अनुसार भोजन हमारे शरीर और मन दोनों के लिए हितकारी होता है। मौसम के अनुसार भोजन में परिवर्तन करके आहार लेने वाले लोग सर्वथा स्वस्थ और प्रसन्नचित रहते हैं। उन्हें बीमार होने का भय नहीं रहता।

- साभार- अन्तर्जाल

।। ओ३म् ।।

महर्षि दयानन्द जयन्ती

के मंगल अवसर पर सभी आर्य बन्धुओं को हार्दिक शुभकामनाएँ।

नारायण लाल मित्तल
कोषाध्यक्ष-न्यास

प्रेरणा-दिवस

आचार्य प्रेमभिक्षु जी की 25 वीं पुण्यतिथि
दिनांक 25 अप्रैल 2020 को, वेद मंदिर मथुरा में आयोज्य

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, प्रखर वक्ता, लोकप्रिय लेखक, कुशल सम्पादक, सिद्धहस्त कवि, वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ पण्डित, वेद मंदिर मथुरा के संस्थापक, तपोभूमि मासिक के आद्य सम्पादक, वैदिक परिवार निर्माण आन्दोलन के सूत्रधार, शतशः परिवारों की दैनिन्दिनचर्या में पंचमहायज्ञों को समाविष्ट कराने वाले, महर्षि देव दयानन्द के मंतव्यों के प्रचार-प्रसार में जीवन खपा देने वाले, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी (स्मृतिशेष) आचार्य प्रेमभिक्षु जी के भौतिक शरीर को विदा हुए 25 वर्ष होने जा रहे हैं। यह ठीक है कि वे हमारे मध्य नहीं रहे परन्तु इस सारे कालखण्ड में उनका सौम्य व्यक्तित्व और उनकी प्रेरणादायी शिक्षाएँ कभी हमसे ओझल नहीं हुयीं। आज जब आर्यसमाज में सर्वत्र सैद्धान्तिक स्खलन, विखण्डन, कथनी और करनी में अन्तर दिखाई देता है तो आचार्य जी की कार्यशैली की प्रभावोत्पादकता तथा प्रासंगिकता का अनुभव होता है।

अतः आचार्य प्रेमभिक्षु जी जैसे महामना की 25 वीं पुण्यतिथि को 'प्रेरणादिवस' के रूप में मनाने का निश्चय किया गया है। वेद मंदिर, मथुरा (उत्तर प्रदेश) में 25 अप्रैल 2020 को प्रातः 8 बजे से देवयज्ञ के साथ कार्यक्रम प्रारम्भ होगा। कार्यक्रम की विस्तृत रूपरेखा आपके समक्ष शीघ्र प्रस्तुत की जायेगी।

आर्यसमाज की दृष्टि से मथुरा जनपद का तो कायाकल्प ही आचार्य जी के पुरुषार्थ से हुआ था परन्तु उनका प्रभाव क्षेत्र तो भारतवर्ष की सीमाओं को भी लांघ कर विदेशों तक स्थापित था। अतः दूर-दूर से आचार्य जी के प्रशंसक उन्हें अपनी श्रद्धांजलि देने को समुत्सुक होंगे इसमें सन्देह नहीं।

अपने आचार्य के पुण्य संस्मरणों के आलोकपुंज के तले, आयें, पुनः उनके व्यक्तित्व व कृतित्व को साक्षी मान, अपने व्रतों का स्मरण करते हुए, आर्यसमाज की उन्नति में सर्वस्व न्यौछावर करने हेतु सन्नद्ध हो जायँ ताकि आचार्य जी के ही शब्दों में 'देव दयानन्द के दिव्य स्वप्न साकार हो सकें।'

विशेष निवेदन यह है कि इस अवसर पर एक स्मारिका के प्रकाशन का निश्चय किया गया है जिसमें आचार्य जी की लेखनी से प्रसूत उनकी कुछ कवितायें, उनके जीवन के प्रेरक प्रसंग समाहित होंगे। आचार्य जी की जो कार्य शैली थी उससे यह निश्चय है कि **जो कभी भी आचार्य जी के सम्पर्क में आये होंगे उनके पास अथवा उनके परिवार में उनके लिखे पत्र, कुछ छायाचित्र अथवा और कुछ नहीं तो प्रेरक स्मृतियाँ अवश्य होंगी।** हमारी उत्कट अभिलाषा है कि यह सामग्री इस स्मारिका का भाग बन, स्मारिका को उच्च आयाम प्रदान करे। आपका थोड़ा सा पुरुषार्थ यह सब कर सकता है, अतः निवेदन है कि ऐसी **कोई भी सामग्री अतिशीघ्र हम तक निम्न पते पर पहुँचाने का श्रम कर इस पुण्य-कार्य में भागीदार बनें।**

1. श्री अशोक आर्य (आचार्य जी के कनिष्ठ पुत्र)
कार्यकारी अध्यक्ष, श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
नवलखा महल, गुलाबबाग, उदयपुर- 313001 (राज.)
मोबाइल- 9314235101, ईमेल- aarya1353@gmail.com
2. आचार्य स्वदेश जी, अधिष्ठाता-वेदमन्दिर, श्री विरजानन्द वैदिक साधना आश्रम,
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग, मसानी, मथुरा

कृपया अपने सद्भावना सन्देश भेज कर भी उपकृत करें।

-: निवेदक :-
विरजानन्द वैदिक साधानाश्रम ट्रस्ट, मथुरा

सत्यार्थ सौरभ का १०० वाँ अंक

आपकी अपनी प्रिय पत्रिका का 100 वाँ अंक इस अप्रैल 2020 में आपके हाथ में होगा। प्रभु कृपा से अभी तक प्रत्येक अंक प्रत्येक माह की 7 तारीख को बिना किसी विघ्न के निकल सका। प्रिय पाठकों की सकारात्मक प्रतिक्रिया तथा प्रोत्साहन हमारी ऊर्जा बना रहा। 7 अप्रैल 2020 रविवार के दिन इस अवसर को 'माता लीलावन्ती सभागार', नवलखा महल, उदयपुर में 'आभार दिवस' के रूप में सम्मान्य पाठकों को ही समर्पित किया जावेगा।

यद्यपि स्थानाभाव के कारण पूर्व में आपके प्रेषित संदेशों को हम 'प्रतिस्वर' में स्थान नहीं दे पाते थे, पर इस 'मील के पत्थर' के संस्पर्श के समय 'सत्यार्थ सौरभ' का सम्पादक तथा व्यवस्थापक मण्डल आपके आशीर्वाद की अपेक्षा करते हुए आपकी सम्मति की प्रतीक्षा करेगा। - भवानीदास आर्य, प्रबन्ध सम्पादक

समाचार

लोकसभा अध्यक्ष का किया अभिनन्दन

श्री अर्जुन देव चड्ढा के नेतृत्व में कोटा की आर्य समाज के सदस्यों द्वारा निरन्तर अनेक सेवा प्रकल्पों के माध्यम से जरूरतमन्द और अभावग्रस्त लोगों के बीच में पहुँचकर उनके जीवन को बेहतर बनाने के लिए कार्य किया जा रहा है। २४ जनवरी को लोकसभा अध्यक्ष माननीय श्री ओम बिरला जी का केसरिया पटका ओढ़ाकर आर्य बन्धुओं द्वारा उनके आवास पर अभिनन्दन किया गया तथा स्वेटर वितरण का कार्यक्रम सम्पन्न किया। इस अवसर पर चड्ढा जी के अतिरिक्त आर्य समाज कुन्हाड़ी के प्रधान श्री पी.सी.मित्तल, तलवण्डी आर्य समाज के प्रधान श्री लालचन्द आर्य, श्री सूरज सिंह यादव इत्यादि आर्य बन्धु उपस्थित थे।

निःशुल्क स्वाध्याय एवं साधना शिविर सम्पन्न

पद्मिनी आर्ष कन्या गुरुकुल, चित्तौड़गढ के तत्वाधान में २६ से ३० दिसम्बर २०१९ तक आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. सोमदेव शास्त्री के सान्निध्य में और दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के सौजन्य से स्वाध्याय एवं साधना हेतु पंच दिवसीय शिविर का आयोजन किया गया। डॉ. सोमदेव जी के अतिरिक्त आचार्य कर्मवीर जी, रोजड़, भजनोपदेशक श्री अमरसिंह जी ब्यावर ने भी शिविरार्थियों को सम्बोधित किया। इस अवसर पर पंच महायज्ञ विधि एवं सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन कराया गया।

– डॉ. सीमा श्रीमाली, आचार्य

माननीय न्यायमूर्ति श्री सज्जन सिंह जी कोठारी का अभिनन्दन

आर्य समाज, कोटा द्वारा आयोजित एक संगोष्ठी में राजस्थान के पूर्व

लोकायुक्त न्यायमूर्ति श्री सज्जन सिंह जी कोठारी ने ऋषि दयानन्द के उपकारों तथा आर्य समाज के कार्यकलापों की विशद् चर्चा करते हुए प्रेरणा दी कि अगर केवल गायत्री मंत्र को ही अर्थ सहित जानते हुए उच्चारित किया जाए तो वह मानव कल्याण का प्रथम सोपान होगा। श्री कोठारी जी ने कहा कि आत्मिक उन्नति ही हमें उन्नति के शिखर पर ले जा सकती है। इस अवसर पर आर्य समाज के प्रतिनिधियों ने कोठारी साहब का केसरिया साफा, मोतियों की माला तथा शॉल ओढ़ाकर स्वागत किया व उनकी सहधर्मिणी का शॉल ओढ़ाकर अभिनन्दन किया। कार्यक्रम का संचालन चन्द्रमोहन कुशवाहा ने किया व अर्जुनदेव चड्ढा से सभी का आभार व्यक्त किया।

– सूरज सिंह यादव, सह संयोजक

क्रियात्मक योग प्रशिक्षण शिविर, रोजड़

वानप्रस्थ साधक आश्रम, आर्यवन, रोजड़ में दिनांक १२ से १६ अप्रैल २०२० तक क्रियात्मक योग प्रशिक्षण शिविर का आयोजन आचार्य सत्यजित् जी की अध्यक्षता में किया जा रहा है। शिविर में क्रियात्मक योग साधना सिखाने के साथ-साथ दर्शन के सूत्र एवं यम-नियम आदि आध्यात्मिक विषयों पर विस्तार से मार्गदर्शन दिया जायेगा। पूज्य स्वामी सत्यपति परिव्राजक का विशेष सान्निध्य रहेगा।

योग साधना शिविर सम्पन्न

आनन्द धाम, उधमपुर आश्रम के मुख्य संरक्षक एवं निदेशक पूज्य महात्मा चैतन्य स्वामी जी की अध्यक्षता एवं पूज्य माँ सत्यप्रिया यति जी के सान्निध्य में दिनांक २६ अप्रैल से ३ मई २०२० तक निःशुल्क योग ध्यान साधना शिविर आयोज्य है जिसमें उपासना, प्राणायाम, योगासन आदि का क्रियात्मक अभ्यास कराया जायेगा।

– भारत भूषण आनन्द

रूपकिशोर शास्त्री वेदवेदांग पुरस्कार से हुए सम्मानित

आर्य समाज, सान्ताक्रुज, मुम्बई द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में आर्य विद्वानों व कार्यकर्त्ताओं को पुरस्कृत किया जाता रहा है। इस वर्ष आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् मनीषी डॉ. रूपकिशोर शास्त्री, कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय को वेद वेदांग पुरस्कार से सम्मानित किया गया। न्यास तथा सत्यार्थ सौरभ परिवार की ओर से डॉ. शास्त्री जी को बहुत-बहुत बधाई एवं अभिनन्दन।

– अशोक आर्य

ग्राम नैनोरा में यजुर्वेद पारायण यज्ञ सम्पन्न

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. सोमदेव जी शास्त्री के जन्म दिवस

के अवसर पर उनके पैतृक गाँव नैनोरा में ६ जनवरी से १२ जनवरी २०२० तक यजुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया गया। इस अवसर पर स्वामी प्रणवानन्द जी (दिल्ली) स्वामी धर्मबन्धु (गुजरात), स्वामी ब्रह्मानन्द जी (हिसार), योगेन्द्र याज्ञिक (होशंगाबाद), डॉ. सीमा श्रीमाली (चित्तौड़गढ़) एवं अनेक विद्वान्, वेदपाठी एवं भजनोपदेशक उपस्थित थे। जिनके उद्बोधनों से समस्त ग्रामीण जनता लाभान्वित हुई। इस अवसर पर वरिष्ठजनों का सम्मान भी किया गया।

– प्रणव शास्त्री

सत्यार्थ प्रकाश पहेली - १२/१९ के विजेता

सत्यार्थ प्रकाश पहेली- १२/१९ के चयनित विजेताओं के नाम इस प्रकार हैं- श्रीमती सरोज वर्मा; जयपुर (राज.), श्रीमती उषा आर्या; उदयपुर (राज.), डॉ. राजबाला कादियान; करनाल (हरियाणा), श्रीमती परमजित कौर; नई दिल्ली, श्री श्रृयांशु गुप्ता; मनियाँ (धौलपुर), श्रीमती किरण आर्या; कोटा (राज.), श्री विनोद प्रकाश गुप्त; दिल्ली, श्री गोवर्धन लाल झंवर; सिहोर (म.प्र.), श्री हर्षवर्द्धन आर्य; नेमदारगंज (बिहार), श्री अनन्त लाल उज्जैनिया; टी.टी. नगर (भोपाल), श्री राजनारायण चौधरी, शाजापुर (म.प्र.), श्री महेश चन्द्र सोनी; बीकानेर (राज.), श्रीमती उषा देवी सोनी; बीकानेर (राज.), श्री यज्ञसेन चौहान; बिजय नगर (राज.), श्री जीवन लाल आर्य; नई दिल्ली, श्रीमती सुनीता सोनी; बीकानेर (राज.), श्रीमती रूपा देवी; बीकानेर (राज.), श्री गणेश दत्त गोयल; बुलन्दशहर (उ. प्र.), श्री फूल सिंह यादव; मुरादनगर (उ. प्र.), श्री राम दत्त आर्य; मनियाँ (धौलपुर), श्रीमती कंचन सोनी; बीकानेर (राज.), श्रीमती सुप्रिया चावला; जालन्धर (पंजाब)।

सत्यार्थ सौरभ के उपर्युक्त सभी सुधी पाठकों को हार्दिक बधाई।

ध्यातव्य– पहेली के नियम पृष्ठ २४ पर अवश्य पढ़ें।

सत्यार्थ-पीयूष

ईश्वर सर्वव्यापक है।

अब विचार करें कि अवतारों के शरीर में जीवात्मा था अथवा नहीं। अगर नहीं तो वे अवतार सृष्टि के अन्य जड़ पदार्थों की भाँति हो जावेंगे क्योंकि जड़ जगत् में ही जीव की अनुपस्थिति तथा परमात्मा की उपस्थिति होती है। परन्तु सभी अवतार मत्स्य, वराह, मनुष्य आदि की भाँति अपनी योनि के अनुरूप सभी क्रियाओं को सम्पादित करते रहे थे। अतएव ध्रुव सत्य है कि इन अवतारों के शरीर में परमात्मा के अतिरिक्त जीवात्मा अवश्य था। जीवात्मा निश्चित ही परमात्मा से भिन्न सत्ता है। अतएव जीवात्मा की उपस्थिति यह सिद्ध करती है कि ये अवतार भी अन्य प्राणियों की भाँति ही थे।

अवतार निषेध-

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्॥

- श्वेता. ३/२१

यह पुरुष, अजर, अमर, सर्वव्यापक, विभु और नित्य है, ब्रह्मवादी कहते हैं कि वह जन्म नहीं लेता।

निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ रहते हुए परमात्मा पूरी सृष्टि का नियंत्रण करने में पूर्ण समर्थ है तो अवतार रूप में एकदेशीय हो संबंधित योनि की सीमित क्षमता में बद्ध हो निर्बल बनने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा?

अगर यह कहा जाय कि दुष्टों का संहार करने के लिए परमात्मा अवतार लेता है तो यह विचार ही हास्यास्पद है क्योंकि जिसको पैदा ईश्वर ने किया उनका विनाश करने में उसे क्या असमर्थता हो सकती थी। आप एक मूर्ति बना भले ही न सकें पर उसे तोड़ तो छोटा बच्चा भी देता है। अतः जो निर्माणकर्त्ता है वह स्वनिर्मित वस्तु का विनाश नहीं कर सकता यह बुद्धिगम्य नहीं। फिर इन तथाकथित २४ अवतारों में से जितने हो गये, वे जिस कालखंड मे हुए उस उस कालखण्ड के अतिरिक्त काल में दुष्टों को दण्ड देने व धर्मात्माओं का उद्धार करने का कार्य कौन करता था? निश्चय ही परमात्मा। जब अजन्मा, निराकार परमात्मा उस सारे समय में वह कर्म कर सकता था तो तब क्यों नहीं कर सकता था? तब अवतार की क्या आवश्यकता पड़ गई थी? इसका स्पष्टीकरण अवतारवादियों के पास नहीं है।

यह भी विचार करें कि सतयुग, त्रेता तथा द्वापर में परमात्मा का अवतार लेना कहा गया है। कलियुग में अभी प्रतीक्षा है। वह यह वर्णन तो सातवें मनवन्तर की २८वीं चतुर्युगी का है। उससे पूर्व की २७ चतुर्युगियों में क्या अवतार की आवश्यकता नहीं हुई?

यह भी विचारणीय है कि परमात्मा तो पूरे ब्रह्माण्ड का नियन्ता है सिर्फ भारतवर्ष का नहीं। अतः जिन आवश्यकतों के कारण आर्यावर्त्त में ये अवतार हुए, विश्व के अन्य भूभाग में क्यों नहीं?

अवतार प्रकरण-ईश्वर जन्म नहीं लेता-

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२।ऽअस्ति देवता विदानः।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध॥

- यजु. ३३/७६

हे मनुष्यों! जो परमेश्वर सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाला, अनुपम और अनन्त विद्यावाला है, जो न तो उत्पन्न होता है, न उत्पन्न हुआ था और न उत्पन्न होगा तथा जो सबसे महान् है, उसी की तुम निरन्तर उपासना करो।

पूर्णावतार व अंशावतार में क्या भेद है? क्यों कभी अंशावतार हुआ? क्यों कभी पूर्णावतार? क्यों कभी परमात्मा ने कम कलाओं वाला अवतार लिया, क्यों कभी सम्पूर्ण (तथाकथित १६ कला) कलाओं वाला?

परमात्मा सम्पूर्ण ही अवतार रूप में जन्म लेता है तो बाकी ब्रह्माण्ड की व्यवस्थाओं का नियमन तत्समय में कौन करता है? और अगर इस नियमन हेतु बाकी को छोड़ एक अंश ही अवतार रूप में आता है तो परमात्मा अखण्ड़ एकरस नहीं रहता। दूसरे, अंश में पूर्ण के गुण होते हैं परन्तु अवतारों में राग, द्वेष, दुःख, अल्पज्ञता आदि पाये जाते हैं जो परमात्मा के गुण नहीं, अतः अवतार परमात्मा के अंश नहीं हो सकते। रावण, कंस आदि दुष्टों के विनाश के लिए परमात्मा को अवतार रूप लेना पड़ा ऐसा कहा जाता है। पर आज गली गली में रावण मौजूद हैं और आज के रावणों की तुलना त्रेता के रावण से की जाय तो इन नराधम पिशाचों के सम्मुख उसकी स्थिति देवता तुल्य होगी। फिर अब परमात्मा को अवतार लेने के लिए किस जघन्यता की प्रतीक्षा है?

- अशोक आर्य
नवलखा महल, गुलाब बाग

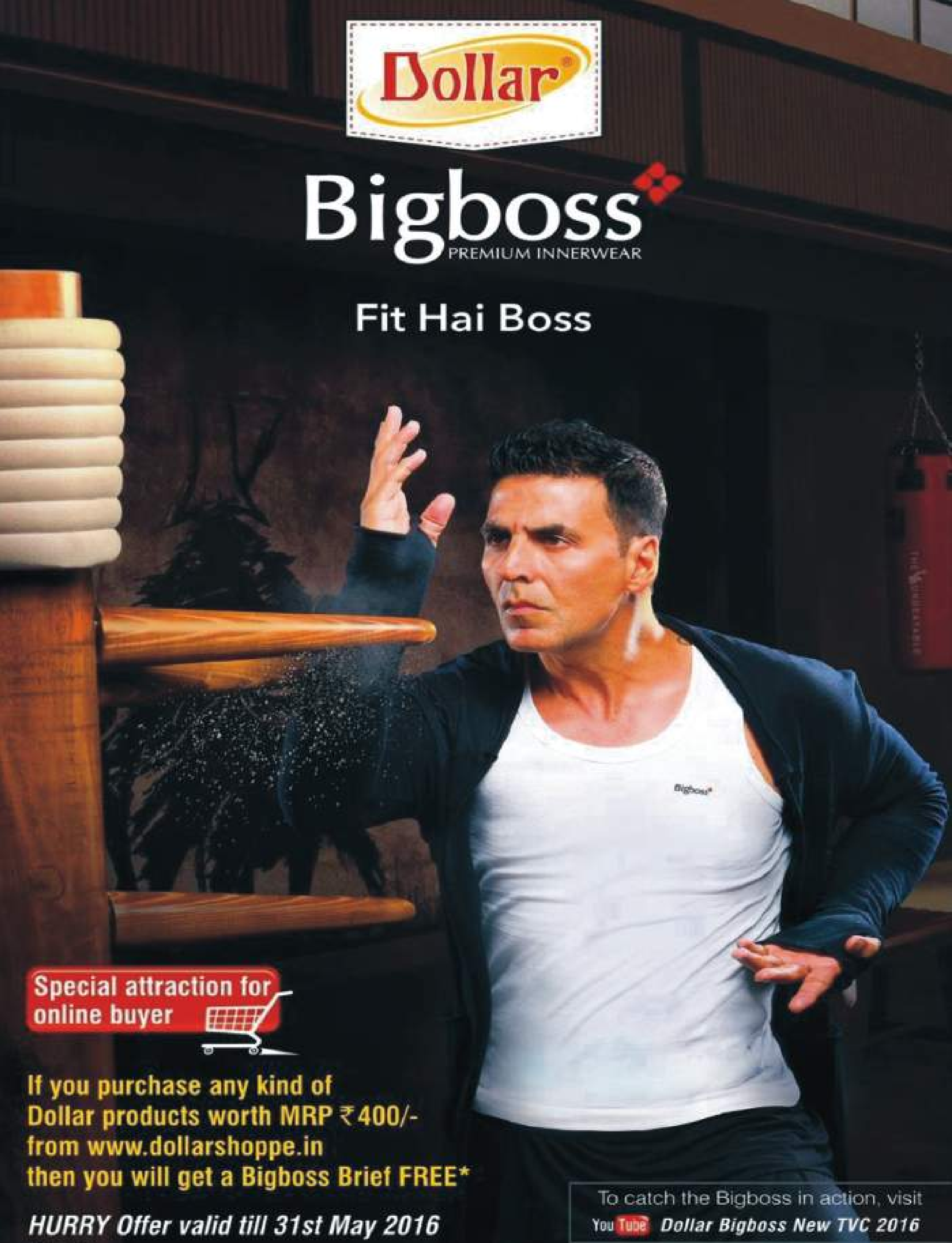
Dollar
Bigboss
PREMIUM INNERWEAR
Fit Hai Boss
Bigboss
Special attraction for online buyer
If you purchase any kind of
Dollar products worth MRP ₹400/-
from www.dollarshoppe.in
then you will get a Bigboss Brief FREE*
HURRY Offer valid till 31st May 2016
To catch the Bigboss in action, visit
YouTube Dollar Bigboss New TVC 2016

RNI Registration No. RAJHIN/2012/47777 February-2020 Postal Registration No. RJ/UD/29-107/2019-2021

इस प्रकार के बहुत से ठग होते हैं, जिनकी विद्वान् ही परीक्षा कर सकते हैं और कोई नहीं। इसीलिये वेदादिविद्या का पढ़ना सत्संग करना होता है, जिससे कोई उसको ठगाई में न फसा सके, औरों को भी बचा सके। क्योंकि मनुष्य का नेत्र विद्या ही है। विना विद्या, शिक्षा के ज्ञान नहीं होता।

–सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास पृष्ठ ३८९

स्वत्वाधिकारी, श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर की ओर से प्रकाशक, मुद्रक अशोक कुमार आर्य द्वारा चौधरी ऑफसेट प्रा. लि., 11/12 गुरुरामदास कॉलोनी, उदयपुर से मुद्रित
प्रेषण कार्यालय- श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, नवलखा महल, गुलाबबाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर-313001 से प्रकाशित, सम्पादक-अशोक कुमार आर्य
मुद्रण दिनांक- प्रत्येक माह की ३ तारीख प्रेषण दिनांक- प्रत्येक माह की ७ तारीख प्रेषण कार्यालय- मुख्य डाकघर, चेतक सर्कल, उदयपुर